।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

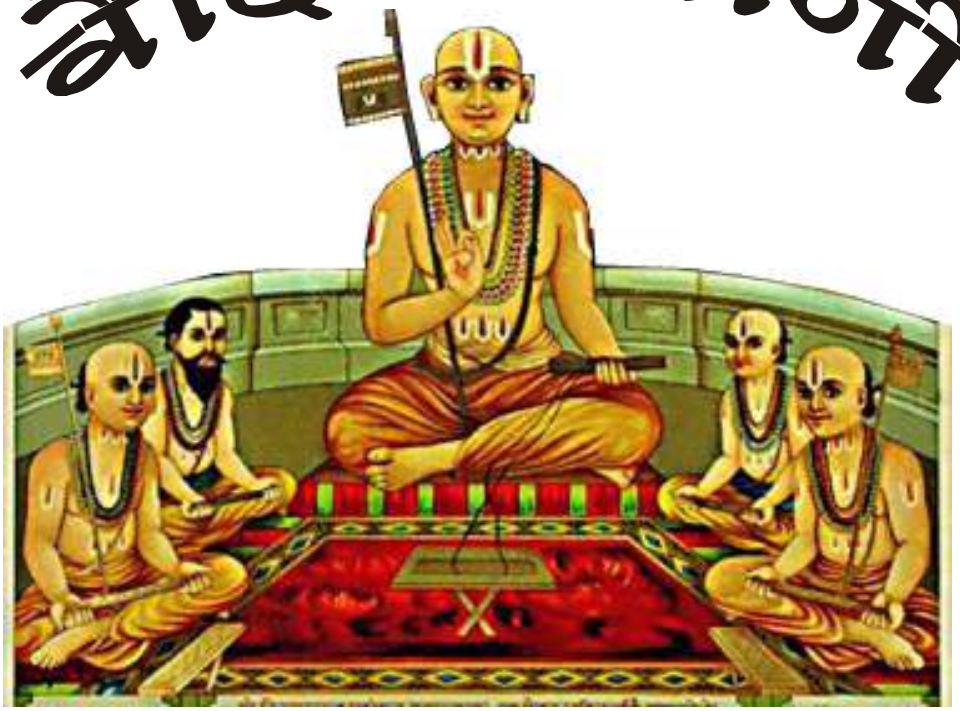

वर्ष- २३ जून सन्- २०१० ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- २ रामानुजाब्द त्रैमासिक प्रकाशन

स्फुरत्किरीटाङ्गदहारकण्ठिकामणीन्द्रकाञ्चीगुणनूपुरादिभिः।
रथाङ्गशङ्खासिगदाधनुर्वरैः लसत्तुलस्या वनमालयोज्ज्वलम् ।।

अर्थात् आप दीप्तिमान मुकुट, भुजाबन्द, कण्ठिका-हार, मणिश्रेष्ठ, कमरबन्द, नूपुर आदि और चक्र, शंख, खड्ग, श्रेष्ठ धनुष तथा सुन्दर तुलसीपत्र सहित वनफूलों की माला से सुशोभित हो रहे हैं।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी	३
२.	परम रहस्यमयी गीता पर ध्यान दें	४
३.	करे पञ्चकाल विधि से उपासना	६
४.	दैवीगुणों से जीवन में लाभ	८
५.	दिव्य देश मुक्ति नारायण	१०
६.	मुक्ति नारायण की यात्रा	१४
७.	रामायणं वेद समम्	१५
८.	श्रीरामानुजाचार्य जी का जीवन-वृत्त एवम् उनका दार्शनिक सिद्धान्त	१७
९.	उर्मिला और लक्ष्मण	२३
१०.	जीवरूप बीज प्रदान भगवान् करते हैं	२६
११.	कल्याणकारी कुछ बातें	२६
१२.	अनन्य भक्ति से होता है गुणातीत	२७
१३.	वास्तु-विचार	२८
१४.	सद्गृहस्थों को भी होती है मुक्ति	३०
१५.	हरिद्वार महाकुम्भ का आँखों देखा वर्णन	३१

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) २५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ४०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

परम पिता परमेश्वर को प्राप्त करने का सर्वाभौम एवं सुगम उपाय है उन्हीं पर निर्भर होकर उन्हीं की शरण में अपने आप को समर्पण कर देना। उनके चरणों में समर्पित हुए बिना जीव का कल्याण नहीं होता है। भगवान की दैवी माया सारे बद्ध जीवों को कष्ट दे रही है। सुखी बनने के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते हुए मनुष्य सुखी नहीं है। सुख अनेक प्रकार के होते हैं। उनमें किसी को धन का सुख है तो परिवार का सुख नहीं। परिवार और धन दोनों का सुख है तो वह शारीरिक और मानसिक रोग से पीड़ित है।

शारीरिक और मानसिक कष्ट होने पर धन, परिवार आदि का सुख, दु:ख रूप में अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में एक मात्र सर्वेश्वर भगवान नारायण ही उपाय हैं। मानव क्षणिक भोग वासना के कारण भविष्य में होने वाले महान कष्टों को नहीं समझ पाता है। जैसे फतिंगे क्षणिक लाभ के लिए दीपक के पास पहुँचकर आनन्द लेना चाहते हैं, परन्तु वे आनन्द के बदले जलकर भस्म हो जाते हैं, वैसे ही मनुष्य भोगवासना वश भोग से आनन्द लेना चाहता है; किन्तु वह अपने जीवन को कष्ट में डाल देता है।

अत एव वेदान्त का प्रमुख ग्रन्थ उपनिषद् आदि पुरुष परमपिता परमेश्वर भगवान विष्णु की शरणागति का रहस्य बतलाता है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रणिणोति तस्मै।
तं ह्य देवमात्मबुद्धि प्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।

जो परमपुरुष परमात्मा भगवान विष्णु अपने नाभिकमल से ब्रह्मा को उत्पन्न करके उन्हें समस्त वेदों का ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जो अपने विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए भक्तों के हृदय में विशुद्ध बुद्धि को प्रकट करते हैं, उन सर्वशक्तिमान पुरुषोत्तम भगवान विष्णु की मैं मुक्ति की इच्छा से शरण ग्रहण करता हूँ। वे मुझे इस संसार बन्धन से मुक्ति प्रदान करें। **श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये** 'इस द्वय मंत्र का पूर्वाचार्यों ने' **''मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये''** इसी को आधार माना है। यह द्वय मंत्र शरणागति प्रधान है। इस मंत्र से भक्त भगवान् से नित्य कैङ्कर्य की प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भी द्वयमन्त्रार्थ स्वरूप होने से दीर्घ शरणागति स्वरूप ही माना गया है।

अत: मुक्ति की कामना वाले भक्तवाल्मीकि रामायण का सतत अध्ययन एवं मनन करते हैं। नारायणोपनिषद्, श्रीमद्भागवत, पद्मपुराण, आदि सभी सद्ग्रन्थों में ओं नमो नारायणाय यह मन्त्र मिलता है। इस मन्त्र से जीवात्मा स्वरूप का ज्ञान होता है। यह आत्मस्वरूप का ज्ञान करने के लिए दर्पण है। जैसे सधवा नारी सिंगार करने के लिए दर्पण में अपने स्वरूप को देखती है। उस स्वरूप को देखने से उसे अपने पति की प्रसन्नता का अनुभव होता है वैसे ही श्रीवैष्णव भक्त मूल मन्त्रार्थ रूपी दर्पण में अपने स्वरूप को देखकर अपने स्वामी नारायण की प्रसन्नता का अनुभव करता है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:।।

यह चरम मन्त्र है, भगवान् ने इस मन्त्र से शरणागत जीव को विश्वास कराया है कि तुम मेरे चरण कमल को उपाय मान लोगे तो मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दिव्य धाम वैकुण्ठ दे दूँगा। इसलिए यह चरम मन्त्र भगवान् की कृपा पर दृढ विश्वास दिलाता है।

परम रहस्यमयी गीता पर ध्यान दें

गीता सुगीता कर्त्तव्या किंमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्यनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

परमात्मा द्वारा सृजित सभी प्राणियों में मानव अधिक बुद्धिजीवी है। ज्ञानपूर्वक सब कार्यों को करने की क्षमता इसी में है। यह बाह्य दृष्टि से देखकर संसार में विशेष चीजों के तथ्य को समझ सकता है; परन्तु तीन चीजों का स्वरूप बाह्य दृष्टि से देखने में नहीं आता। गला से ऊपर मुखादि का स्वरूप शरीर को संचालित करने वाला जीव स्वरूप तथा समष्टि रूप में शरीर और जीव का नियामक ब्रह्म स्वरूप। इनमें गला से ऊपर का स्वरूप दर्पण रूप शीशा में देखा जा सकता है, किन्तु जीव और ब्रह्म का स्वरूप गीतारूपी दर्पण के बिना देखा समझा नहीं जा सकता। गीता हमें अपने आपको पहचान कराकर आनन्द सागर ब्रह्मतक पहुँचा देती है। संसार में विभिन्न कष्टों से अति पीड़ित मानव के आनन्दमय सागर में मिला देने की शक्ति एकमात्र गीता में ही है। गीता में जीव और ब्रह्म स्वरूप का अध्ययन एवं मनन करने पर ब्रह्म सान्निध्य की अनुभूति अवश्य होती है। संदेह रहित होकर शुद्धभाव से कोई भी व्यक्ति गीता का अध्ययन करके जीवस्वरूप तथा ब्रह्मस्वरूप का दर्शन कर सकता है। इसमें अपनी अनुभूति है। भगवत्कृपा से जब से गीता का शुद्धभाव से मनन करने लगा, तब से जीव एवं ब्रह्मस्वरूप का प्रत्यक्षवत् अनुभूति मिल रही है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता को परम रहस्य ग्रन्थ कहा है। जिसके श्रवण मात्र से भगवान् की परा भक्ति प्राप्त होती है। जो भक्त इस परम रहस्य ग्रन्थ को सुनता एवं सुनाता है वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त करता है।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेस्वभिधास्यति।
भक्ति मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्य संशय।।

गीता का अध्ययन ज्ञानयज्ञ है। ज्ञानयज्ञ से भगवान् विशेष सन्तुष्ट होते हैं। भगवान् की प्रसन्नता से भावना के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। इसी भाव को भगवान् ने सप्तम अध्याय में प्रकट किया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।१६।।

अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्त होते हैं। अर्थार्थी, आर्त और जिज्ञासु भक्त मध्यम कोटि के हैं, क्योंकि वे भगवान् को साधन बनाकर लौकिक ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं और ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर भगवान् को भूल जाते हैं।

ज्ञानी भक्त के साध्य-साधन परमात्मा होते हैं। अतः वे उत्तम भक्त माने जाते हैं। भगवान् ज्ञानी भक्त से अलग भी नहीं होते। मछली का जैसा सम्बन्ध जल से होता है, वैसा ही सम्बन्ध ज्ञानी भक्त का भगवान् से होता है। वैसे ज्ञानी भक्तों में प्रह्लाद, नारद, शुकदेव, सनकादि तथा हनुमान् आदि स्मरण किये जाते हैं। उन ज्ञानी भक्तों को भगवान् ने अपनी आत्मा के रूप में माना है। ''ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'' ज्ञानी भक्तों की भाँति भगवान् ने शास्त्रों में सर्वाधिक गीता का महत्त्व दिया है। उन्होंने कहा है कि मेरे भक्तों के प्रति इस गीताशास्त्र का उपदेश करने वाले पुरुषों की अपेक्षा दूसरा कोई भी मेरा प्रिय नहीं है और न इस संसार

में कोई दूसरा प्रिय होगा।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।।१८-६९

मानव जीवन को समुन्नत बनाने वाले आचरणीय अनेक विषयों का समुचित प्रतिपादन गीता करती है।

यथा अर्जुन ने वसुदेवनन्दन श्यामसुन्दर से पूछा कि संसार के कष्टों में डालने वाले पापों से मैं सदा वञ्चित रहना चाहता हूँ, परन्तु कभी चाह न होने पर भी पापकर्म में प्रवृत हो जाता हूँ, इसका क्या कारण है।

देवकी नन्दन श्रीकृष्ण ने कहा कि काम, क्रोध और लोभ ये मानव के प्रबल शत्रु हैं। इनमें काम सबसे अधिक शक्तिशाली है। वह समस्त इन्द्रियों, मन और बुद्धि को प्रभावित कर मनुष्य से बलात् पाप करा लेता है। इसलिए हे अर्जुन! जो दुःखजनक पापों से बचना चाहता हो, उसे काम रूपी शत्रु को सदा के लिए मार देना चाहिए।

भगवान् श्रीकृष्ण का यह समाधान पूर्ण सटीक है। रावण ने काम के कारण कुल सहित लङ्का का नाश करा दिया। राजा दशरथ काम के वश में होकर अपना प्राण प्रिय पुत्र श्रीराम को वन में भेज कर अपने शरीर का त्याग किया। गीता राग, द्वेष से ऊपर उठकर मानव मात्र के लिये कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय को ही भक्ति से मुक्ति नहीं मिलती अपितु स्त्री, वैश्य और शूद्र आदि भी परमपद के अधिकारी हैं।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

जो व्यक्ति वैदिक धर्म मार्ग से गिरकर गलत कर्म में प्रवृत्त हो गया है, वह भी भगवान् में प्रेम करने का अधिकारी है। जब वह भगवान् के चरणों में प्रेम करने लगता है, तब उसका पापाचरण समाप्त हो जाता है तथा उसमें भगवान् की निर्मल भक्ति आ जाती है।

अपिचेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यगव्यवसितो हि सः।।

गीता धनी, निर्धन, शिक्षित अशिक्षित सबों के लिए उपासना का सुलभ उपाय बतलाती है। पत्र पुष्प, फल और जल सबों को आसानी से प्राप्त हो जाते हैं उनमें न विशेष अर्थ की आवश्यकता है और न विशेष ज्ञान एवं परीक्षण की। प्रेम पूर्वक पत्र, पुष्पादि भगवान् के चरणों में समर्पित करने मात्र से ही वे प्रसन्न हो जाते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपद्धतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

इससे भी सुलभ उपाय यह कहा गया है कि जो कर्म करे, जो भोजन करे तथा हवन और दान करे उसे भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में श्रद्धा पूर्वक समर्पण कर दे।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्रपश्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।

उससे भवबन्धन में डालनेवाले शुभ-अशुभ कर्म बन्धन कारक नहीं होते हैं। मानव कल्याण के लिए उससे सरल और सुलभ मार्ग क्या हो सकता है? अतः माता की भाँति सबों की हितकारिणी गीता से प्रेम अवश्य करे। गीता आपकी सारी समस्याओं को सुलझा देगी।

करे पञ्चकालविधि से उपासना

ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड के अधिपति हैं। पाञ्चरात्रागम में वर्णित पञ्चकाल का विधि पूर्वक विधान करने से ईश्वर प्रसन्न होकर सायुज्य गति प्रदान करते हैं। लक्ष्मीतन्त्र में भी कहा गया है कि श्रीपति की पञ्चकाल विधि से उपासना करने पर परमपद प्राप्त हो जाता है। पञ्चकाल शब्द में काल शब्द कर्म का उपलक्षण है अर्थात् पाँच कर्मों का प्रणयन जिस काल में होता है वह पञ्चकाल है। कर्म के भेद से एक ही काल की पञ्च परिकल्पना पञ्चकाल है। इसे ही हम पञ्च प्रकारार्चन भी कह सकते हैं। पञ्चरात्र संहिताओं में पञ्चकाल विषयक समाग्री प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। रत्नत्रय में से एक जयाख्य में कुछ महत्वपूर्ण सन्दर्भों के अलावा पाद्यतन्त्र (चर्यापाद) पारमेश्वर संहिता ''लक्ष्मीतन्त्र'' श्री प्रश्न संहिता, सनत्कुमार संहिता में पञ्चकाल की व्याख्या तथा एतत् सम्बन्धी वर्णन प्राप्त है। इन ग्रन्थों में पञ्चकाल को पञ्चविध बताया गया है। वस्तुत: अहोरात्र पञ्चविध विभक्त है। (१) अभिगमन (२) उपादान (३) इज्या (४) स्वाध्याय एवं (५) योग रूप में। जयाख्य संहिता के अनुसार भी सम्पूर्ण अहोरात्र पञ्च प्रहरों में बँटा हुआ है। पहला प्रहर अभिगमन काल है- प्रात: ब्राह्म मुहूर्त्त से लेकर दिन के प्रथम प्रहर तक, दिन का दूसरा प्रहर उपादान काल है। इज्या काल अगले तीसरे तथा चौथे प्रहर के पूर्वार्द्ध काल की सीमा में आता हैं। स्वाध्याय काल चतुर्थ प्रहर का शेष भाग है और अन्तिम काल योगकाल उसी रात्रि के आरम्भ से दूसरे दिन के ब्रह्ममुहूर्त्तकाल तक चलता है। जयाख्य संहिता में ही इन क्रमिक पञ्चकालों में अन्तिम योगकाल को ब्रह्मसिद्धि प्रदायक कहा गया है—

पञ्चमो योग संज्ञोऽसौ कालांशो ब्रह्मसिद्धिदः।

स्पष्टार्थ क्रमिक पंचकाल को इस प्रकार समझे (१) अभिगमन काल (२) उपादान काल (३) इज्याकाल (४) स्वाध्यायकाल (५) योगकाल। प्रात: काल ब्रह्ममुहूर्त्त से लेकर दिन के प्रथम प्रहर तक अभिगमन काल है। शैया छोड़ने के पश्चात् प्रथम प्रहर के अन्त तक अभिगमन काल नारदीय संहिता में भी प्रतिपादित है। प्रस्तुत सन्दर्भ में अभिगमन काल का विवेचन किया जा रहा है।

प्रात: काल उठकर हाथ एवं पाद का प्रक्षालन करके समस्त कल्मषों को दूर करनेवाले ईश्वर का स्मरण करे, तदनन्तर गुरु की कृपा से श्रीविष्णु सम्बन्धी ज्ञान अर्थात् जीव का ब्रह्म के सम्बन्धों का चिन्तन करे। लक्ष्मीतन्त्र के निर्देशानुसार अभिगमन का आरम्भ प्रपत्ति पूर्वक किया जाता है।

पाञ्चरात्रागमों में अभिगमन क्रिया के विवरण भी उपलब्ध हैं। जिसके अनुसार स्नान में उपयोगी शुद्ध मिट्टी को अपने हाथ में लेकर मार्ग में भी श्रीविष्णु का स्मरण करते हुए तड़ाग या नदी के तट पर रख दें, भक्त वैष्णव अपने दाहिने कान में यज्ञ सूत्र को आवेष्टित करके और उत्तरीय वस्त्र को अपने शिर में बाँधकर खुले मैदान की तरफ कभी भी जाना हो जाय। मल-मूत्र का त्याग करते समय भूमि के उपर तृण या पत्ते को रखकर प्रात: उत्तराभिमुख होकर और सायं दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्र का उत्सर्ग करे।

हस्तशोधनोपरान्त द्वादश बार जल से कुल्ला करके यज्ञोपवीत को यथा स्थान कर ले। काष्ठ या पत्ते से दन्तधावन करने के पश्चात् स्नान करके एक बार पुन: कुल्ला करे तथा पुन: आचमन करके

व्याहृति (ॐ भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्) के साथ विधिपूर्वक तीन बार प्राणायाम करे और यह भाव रखे कि मैं जगदाधार श्रीविष्णु की सेवा करने के लिए उनकी अनुमति लेकर यह स्नान कर रहा हूँ। स्नानोपरान्त कुश की या सुवर्ण की पवित्री अनामिका के मध्य भाग में शुद्धि के लिए सर्वदा धारण करे। अधमर्षण सूक्त या पुरुष सूक्त से हरि का स्मरण करता हुआ स्नान करे। भक्त वैष्णव सदा दो वस्त्र और कौपीन धारण करे। तदनन्तर ललाट पर उर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण करके विधि पूर्वक भगवत कृपा कि सम्प्राप्ति के लिए सन्ध्योपासन कर्म करे। इसके बाद रविमण्डल में स्थित शंख, चक्र एवं गदा को धारण करने वाले किरीट एवं वनमाला तथा अन्यान्य भूषणों से भूषित सर्वव्यापी नारायण का स्मरण करता हुआ मानसिक एवं षोडश उपचारों से नारायण की अर्चना के प्रति अभिगमन करे।

इसी अभिप्राय को पाद्यसंहिता के चर्यापाद के त्रयोदश अध्याय में प्रतिपादित किया गया है। श्री प्रश्न संहिता में दन्तधावन के लिए निश्चित काष्ठ का स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता; परन्तु पाद्य तन्त्र में वैष्णव भक्त के दन्तधावन करने के लिए व्यग्रोध (वट) उदुम्बर (गुलर), प्लक्ष, आम्र, अर्जुन, धातकी, वेणु (बांस), खदिर, शमी, पलाश ये काष्ठ ही अभिहित हैं। पुनः दन्तधावन करने के लिए श्रीप्रश्न संहिता में कोई निश्चित दिशा का निर्देश नहीं है, जबकि पाद्य संहिता में दन्त धावन के लिए पूर्व की दिशा का निर्देश है।

याज्ञवल्क्य ने अपनी-शिक्षा में भी दन्तधावन के लिए आम्र, पलाश, विल्व अपामार्ग (चिड़चिड़ी), शिरीष, न्यग्रोध, खदिर, कदम्ब के काष्ठ को उपयोगी बताया है और उनका मत है कि रसीले वृक्षों का दन्तधावन यश को देने वाला और काँटेदार वृक्षों का दन्तधावन पुण्य को प्रदान करने वाला है—

आम्र पलाश विल्वानां अपामार्ग शिरीषयोः।

सर्वे कष्टकिनः पुण्याः क्षौरिणश्च यशस्विनः।।

ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए दन्तधावन के काष्ठ की लम्बाई भी क्रमशः द्वादश एकादश व अष्टअंगुल अभिहित है। यहाँ यह भी निर्देश है कि यदि वैष्णव को स्नान के लिए नदी व तड़ाग उपलब्ध न हो तो कुएँ के जल से स्नान करे। यदि वैष्णव जन अस्वस्थ है तो इस स्थिति में वे उष्ण जल से स्नान करे या नाभि के नीचे से ही कटि स्नान कर ले। तदन्तर भगवान् भुवन भास्कर का उपस्थान, गायत्री जप आदि क्रियाओं को करके गुरु और वृद्धौ को प्रणाम करने के बाद विधिवत् देवालय में अभिगमन करे।

ब्रह्ममुहूर्त्त में वैष्णव वाणी, मन से संयत होकर जप, ध्यान एवं अर्चना के स्तोत्रों के द्वारा जगदाधार श्रीविष्णु के अभिमुख गमन करें। यही अभिगमन है। मैं जो कुछ भी कर्म कर रहा हूँ वह समग्र कर्म ईश्वर का ही है और उसी की प्रेरणा से मैं जगत् के व्यवहार में प्रवर्तित हो रहा हूँ''। इस प्रकार की भावना ही भगवान् श्रीविष्णु की वास्तविक उपासना है।

इस प्रकार ज्याख्य, सनत्कुमार, नारदीय संहिताओं में अभिगमन काल का संक्षिप्त वर्णन उपलब्ध होता है, परन्तु पाञ्चतन्त्र एवं प्रश्न संहिता में इसकी विस्तृत विवेचना है। लक्ष्मीतन्त्र के अनुसार शैया से प्रातःकाल उठकर श्रीविष्णु भगवान् की स्तुति करे तथा समस्त प्राणी सात्विक मार्ग पर विचरण करें यह ईश्वर से प्रार्थना करे साथ ही यह भी कहे कि ये समग्र जीवधारी आपके परमपद को प्राप्त करें।

दैवीगुणों से जीवन में लाभ

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवतद्गीता में देवी और आसुरी-सम्पदा का वर्णन किया है। उनमें हम आसुरी सम्पदा से दूर रहकर दैवी-सम्पदा को अपने जीवन में उतारकर मानव-जीवन को सफल बनाते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं-यही हमारे धर्मग्रन्थों का सार है। मानव जीवन का लक्ष्य भी मोक्ष प्राप्ति है, भोग प्राप्ति नहीं, जैसा कि प्रात: स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस के उत्तराकाण्ड में बताया है।

एहि तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।

अर्थात् मनुष्य शरीर की प्राप्ति भोगों के भोगने को नहीं। मनुष्य-लोक के भोग तो तुच्छ हैं, स्वर्ग के भोग भी अन्त में दु:ख की जड़ ही हैं। गीता में भी इन भोगों को दु:खों का हेतु ही बताया गया है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।

अर्थात् जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि वे विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी दु:ख के ही हेतु हैं और आदि अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं, इसलिये हे अर्जुन! बद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। इस उपर्युक्त कथन के द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि मानव का लक्ष्य भोगों की प्राप्ति नहीं है। अब हमें दैवी सम्पदा और आसुरी-सम्पदा को समझना है कि हमारे जीवन का उत्थान किस सम्पदा को धारण करने में है! गीता के सोलहवें अध्याय के प्रारम्भ में ही इन दोनों सम्पदाओं का वर्णन आया है तथा उनके गुण-दोषों का भी कथन है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।

अर्थात् भय का सर्वथा अभाव, अन्त:करण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्त्वज्ञान के लिये ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवत्पूजा, अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेद-शास्त्रों के पठन-पाठनपूर्वक भगवन्नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्म पालन के लिये कष्ट-सहन एवं शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अन्त:करण की सरलता दैवी-सम्पदाएँ हैं।

इनमें अन्त:करण की पवित्रता हमारे भोजन पर आधारित है। हम जैसा भोजन करेंगे उसके अनुसार ही हमारा अन्त:करण बनेगा। हमारे भोजन में सात्त्विक पदार्थों का जितना समावेश होगा, अन्त:करण उतना ही निर्मल होगा और अन्त:करण निर्मल होने से आगे बतायी गयी सम्पदाएँ स्वत: प्राप्त होने लगती हैं। आगे अन्य दैवी-सम्पदाओं के विषय में बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनवाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण करना, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रुद्ध न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्त:करण की उपरामता, किसी की भी निन्दादि न करना, सब प्राणियों में हेतु रहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रविरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव ये सब दैवी सम्पदाएँ हैं—

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।

तात्पर्य यह है कि हमें अपने जीवन के क्रिया-कलापों में अहिंसा का ध्यान रखना जरुरी है। किसी का जीवन नष्ट करना ही हिंसा नहीं, उसे कष्ट

पहुँचाना भी हिंसा के क्षेत्र में ही आता है। हमारे आचार्यों ने अहिंसा के महान गौरव का वर्णन किया है। महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में इसका साधनपाद में वर्णन किया है—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।।

अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर उस साधक के समीप सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में इसी अहिंसा की महिमा का वर्णन किया है—

खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं।
बिरहित बैर मुदित मन चरहीं।।

अर्थात् प्रभु श्रीराम ने देखा कि मुनि वाल्मीकिजी के आश्रम में पशु-पक्षी आनन्दपूर्वक कोलाहल करते हुए विचरण कर रहे हैं। ऐसा मुनि के प्रभाव से हुआ था, क्योंकि मुनि की हिंसावृत्ति शान्त हो गयी थी और वे अहिंसा धर्म में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गये थे। इसके अतिरिक्त श्रीभगवान ने अन्य जो दैवी सम्पदाएँ बतायी वे हैं- तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतर की शुद्धि किसी में भी शत्रुभाव का न होना, अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव—

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

उपर्युक्त दोनों श्लोकों के अनुसार साधक की दिनचर्या होगी तो इस तीसरे श्लोक में वर्णित लक्षण उसमें स्वतः ही आ जायेंगे, यानि साधक में तेज का प्रादुर्भाव होगा, जिससे मलिन हृदय के प्राणी उसका सामना करने में भयभीत होंगे। साधक में क्षमा, धैर्य और कष्ट सहन करने में अदम्य साहस का प्राकट्य होगा। पवित्रता, प्रेमभाव, अभिमान का अभिमान का अभाव आदि ऐसे गुण हैं, जिन्हें अपनाकर सामान्य मनुष्य भी महापुरुष बन सकता है।

आसुरी-सम्पदा का भी लक्षण देखिये और इनसे हर समय दूर रहने का प्रयत्न करते रहना ही मानव जीवन की सफलता है-

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ।।

उपर्युक्त श्लोक में आसुरी-सम्पदा के लक्षण हैं। हे अर्जुन! धार्मिक कृत्यों में ढोंग, मिथ्याभिमान, अभिमान और क्रोध करना कठोर शब्दों का प्रयोग, आज्ञान-ये सब चिह्न आसुरी-सम्पदा में उत्पन्न जीव के हैं। इनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है क्योंकि साथ का प्रभाव अवश्य ही जीव को प्रभावित करता है। इसका प्रमाण श्रुतियों में और गीताशास्त्र में भी मिलता है-

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।।
(कठोपनिषद्-२-२-७)

कर्म और शास्त्रादि के श्रवण से जैसा भाव प्राप्त है तदनुसार शरीर धारण करने के लिये जीवात्मा नाना प्रकार की योनियों को प्राप्त होते हैं, दूसरे स्थाणुभाव का अनुसरण करते हैं।

हमारा भावी जीवन वर्तमान के ऊपर निर्भर है, इसका स्पष्ट प्रमाण उपर्युक्त मन्त्र में मिलता है-

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।।

दैवी सम्पदा तो मुक्ति देती है, यानि भवसागर का नाश करती है। आसुरी सम्पदा हमें आवागमन के चक्कर में डालती है, जहाँ विविध प्रकार के कष्टों की सीमा नहीं, भवसागर यानी मोह का फन्दा जिसमें बुरी तरह से जीव को फँसाकर अनेक यातनाओं में सदैव दुःख भोगना रहता है।

मानव-जीवन का लक्ष्य आत्मस्वरूप की प्राप्ति है। इसके अभाव में मानव-जीवन का दुरुपयोग है, इसलिये अतिशीघ्र उस सत्य को जान लेना ही हमारा लक्ष्य है।

●

दिव्य देश मुक्ति-नारायण

नमः मुक्तिनाथाय शालग्राम स्वरूपिणे।
ब्रह्मरुद्रादि सेव्याय श्रीभूमि सहिताय ते।।

जगत् में हिन्दू राष्ट्र से प्रसिद्ध नेपाल के पश्चिमोत्तर भाग में श्रीमुक्तिक्षेत्र है जो हिमालय का ही एक भाग है। इसका क्षेत्रफल १२ योजन (४८ कोश) कहा गया है। यहाँ भगवान विष्णु शालग्राम शिला रूप में स्वयं व्यक्त हैं।

आरभ्य मुक्ति क्षेत्रं तत्क्षेत्रं द्वादशयोजनम् ।
शालग्राम स्वरूपेण मया यत्र स्थितं स्वयम् ।
स्वभक्तानां विशेषेण परमानन्ददायकम् ।।

वराह पुराण

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने प्राणियों की मुक्ति-प्राप्ति के लिए मुक्ति पर्वत के बीच एक यज्ञ किया था। उन्होनें श्रीविष्णु को जल रूप में और शिवजी को अग्नि के रूप में आवाहन कर श्रीविष्णु के लिए जल में और शिव के लिए अग्नि में घी और पायस (खीर) का हवन किया था।

ब्रह्मा के यज्ञ स्थल पर एक मन्दिर है, जिसमें श्रीदेवी और भूदेवी के साथ भगवान् विष्णु शालग्राम स्वरूप में भक्तों को दर्शन दे रहे हैं। वाहन स्वरूप में गरुड़ जी का विग्रह भगवान विष्णु के पास है। भक्तों ने मन्दिर के पास ही श्रीरामानुज स्वामी का एक छोटा विग्रह स्थापित किया है। मन्दिर के तीन तरफ उच्चे पर्वत से झरनों के जल गिर रहे हैं, जिनकी संख्या १०८ है। वे झरने के जल ब्रह्मा से आवाहित श्रीविष्णु स्वरूप ही हैं। वहाँ से कुछ दूर पर अन्दर से अग्नि की ज्वाला निकलती रहती है जो ब्रह्मा द्वारा आहूत शिवजी का स्वरूप मानी गयी है। मुक्ति-नारायण के मन्दिर में दो ब्रह्मचारिणी महिलायें ही भगवान की सेवा करती हैं। उन्हें भगवत सेवा के योग्य प्रशिक्षण दिया जाता है। किसी कारण वश आचरण से गिर जाने पर वे पूजा से वंचित कर दी जाती हैं। भारतवर्ष में १०८ दिव्य देश हैं जिनमें मुक्तिनारायण प्रसिद्ध दिव्य देश है। यह दिव्य क्षेत्र देश विभाजित होने पर नेपाल में पड़ गया है। मुक्तिनारायण को ही शालग्राम क्षेत्र कहते हैं। प्राय: सभी पुराणों में शालग्राम क्षेत्र की विशेष महिमा बतलायी गयी है। दक्षिण भारत के आलवार सन्तों ने मुक्त कण्ठ से शालग्राम का मंगलाशासन किया है। आलवारों ने अपने मन से कहा है कि हे मन! अव शालग्राम दिव्य क्षेत्र पहुँचों। भगवान श्रीराम एवं भगवान् श्रीकृष्ण ही शालग्राम रूप में विराजमान हैं। मुक्तिनारायण मन्दिर से चौदह किलोमीटर की दूरी पर दामोदर कुण्ड है। वहाँ विशेष बर्फ के कारण अधिक शीतलता रहती है। उसी के पास से गण्डकी की धारा प्रवाहित होती है जिसमें श्रीविष्णु के विभिन्न अवतार स्वरूप चिह्नों से युक्त भगवान शालग्राम प्रकट होते हैं।

गण्डकी एवं शालग्राम भगवान

एक बार लोक कल्याणार्थ भगवान विष्णु हिमालय में तप कर रहे थे। उस समय विशेष तेजपुञ्ज प्रकट हुआ। उसकी गर्मी से भगवान विष्णु के गण्डस्थल (कपोल) से पसीना निकलने लगा और एक नदी का रूप धारण कर लिया। भगवान के गण्डस्थल से प्रकट होने के कारण वह गण्डकी के नाम से प्रसिद्ध हुई। अत एव श्रीशिवजी ने भगवान विष्णु से कहा कि आपके गण्डस्थल से उत्पन्न श्रम बिन्दु से हुयी मुक्ति धारा सभी नदियों में श्रेष्ठ है। यह मुक्ति क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध होकर मुक्तिदायक महान तीर्थ होगा। इसी गण्डकी के गर्भ

में आप शिला रूप में विराजमान होगें

मुक्तिक्षेत्रमिदं देव दर्शनादेव मुक्तिदम् ।
गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा।।

वराह पुराण

गण्डकी की अधिष्ठातृ देवी ने दस हजार वर्ष तक तप करके भगवान विष्णु को प्रसन्न किया और उनसे बरदान माँगा कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे गर्भ में निवास करके मेरे पुत्र रूप में प्रकट हों।

यदि देवं प्रसन्नोऽसि देयां मे वाञ्छितो वरः।
मम गर्भगतो भूत्वा विष्णो मत्पुत्रतां व्रज।।

वराह पुराण

गण्डकी के वचन से सन्तुष्ट भगवान विष्णु ने कहा कि देवि! भक्तों के कल्याणार्थ शालग्राम शिला रूप में तुम्हारे जल रूप गर्भ में वास करूँगा। मेरे सान्निध्य होने के कारण तुम सभी नदियों में श्रेष्ठ मानी जाओगी।

शालग्राम शिलारूपो तव गर्भगतः सदा।
स्थास्यामि तव पुत्रत्वं भक्तानुग्रह कारणात् ।।

वाराह पुराण

स्कन्दपुराण के अनुसार वृन्दा के शापवश भगवान शालग्राम शिला स्वरूप हुए हैं। जलन्धर नाम का एक राक्षस थ। वह देवों, ऋषियों और धर्म मार्ग से चलने वाले सज्जनों को विशेष कष्ट देता था। वह पार्वती के सौन्दर्य पर मोहित होकर उन्हें भी अधिकार में करने का प्रयास करने लगा। श्रीशंकरजी ने जलन्धर का वध करने के लिए सारी शक्ति लगा दी। जलन्धर की पत्नी वृन्दा पतिव्रता थी। उसके सतीत्व के प्रभाव से जलन्धर अजेय हो रहा था। सब देवों ने मिलकर जलन्धर वध के लिए भगवान विष्णु से प्रार्थना की भगवान ने विचार किया कि वृन्दा के पातिव्रत्य धर्म से जगत् को विशेष हानि हो रही है। अतः जगत् कल्याण रूप विशेष धर्म को बचाने के लिए वृन्दा के सतीत्व रूप सामान्य धर्म का हनन करना होगा। एतदर्थ भगवान विष्णु ने छल से वृन्दा का पातिव्रत्य नष्ट किया। तदनन्तर जलन्धर मारा गया।

जब वृन्दा को यह बात ज्ञात हो गयी कि विष्णु ने छल से मेरा पातिव्रत्य धर्म नष्ट किया है तब उसने भगवान विष्णु को शाप दिया कि आप का हृदय पत्थर के समान कठोर है। अतः आप पत्थर बन जायँ। भगवान कुछ क्षण विचार कर गण्डकी में स्नान के लिए गये। वहाँ उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा कि तुम वज्र कीट बनकर गण्डकी के स्वर्णमय उनके पाषाणों में मेरे जितने अवतार हुए है, उनके बोधक शालग्राम स्वरूप मूर्तियों को तैयार कर दो। भगवान की आज्ञा से विश्वकर्मा वज्रकीट नाम का कीड़ा बन गये और गण्डकी में हजारों वर्ष तक रहकर स्वर्णमय शिलाओं में अनेक चक्रादि चिह्नों से युक्त शालग्राम स्वरूप मूर्तियों को तैयार कर दिये। वृन्दा के शाप को कारण बनाकर सर्वेश्वर भगवान विष्णु जगत् कल्याणार्थ गण्डकी नदी के अमृतमय जल में शालग्राम शिलास्वरूप में स्थित हो गये।

विष्णुर्बभूव तस्यां वै शालग्राम शिलातनुः।
सर्वलोकहितार्थाय तस्याः शापेन निश्चितम् ।।

(स्कन्दपुराण)

शालग्राम शिला में चिह्नों के अनुसार भगवान के विभिन्न अवतार स्वरूपों का बोध होता है। कमलाकार शिला के भीतर चार चक्र एवं बाहर वनमाला चिह्न होने पर श्रीलक्ष्मीनारायण स्वरूप शालग्राम माने जाते हैं। बाण चिह्न वाले श्रीराम परशुचिह्न वाले पशुराम, हल चिह्नवाले बलराम, दक्षिण भाग में गोल वनमाला से चिह्नित श्याम वर्ण श्रीकृष्ण अवतार स्वरूप शालग्राम होते हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु के सभी अवतारों के चिह्न शालग्राम भगवान में दृष्टिगोचर होते हैं। ज्ञानी भक्त

अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार शालग्राम शिला स्वरूप भगवान के सभी स्वरूपों का पूजन करते आये हैं। शालग्राम शिला में भगवान के सभी स्वरूपों का पूजन होता है। गण्डकी ही शालग्राम भगवान का अवतार स्थल है। भगवान नारायण शालग्राम रूप में गण्डकी से प्रकट हुए हैं इसलिए गण्डकी को नारायणी भी करते हैं । यह कृष्णा नाम से भी प्रसिद्ध है। नदियों में उत्तम नदी गण्डकी नेपाल राज्य से बहती हुई बिहार राज्य में भागीरथी गंगा में हरिक्षेत्र के पास मिलती है। अत एव उस गण्डकी से सम्बद्ध क्षेत्र महाफलदायी पुण्यतम हरिक्षेत्र कहलाता है।

उपासना के लिए सुलभ शालग्राम

माया से सम्बन्धित एक भी बद्ध जीव चाहे किसी भी शरीर में हो सर्वविध भौतिक सम्पन्नता के बाद भी विकार रहित और सुखी नहीं है। सुखी बनने का आध्यात्मिक साधन मानव को सुलभ है। वह है सर्वेश्वर भगवान नारायण की उपासना। भगवान के पाँच रूप हैं। पर, व्यूह, वैभव, अन्तर्यामी और अर्चा। उपासना के लिए भगवान ने सौलभ्य गुण के कारण अर्चास्वरूप धारण किया है। अर्चा मूर्ति दो प्रकार की होती है स्वयं व्यक्त और प्रतिष्ठित। पाषाणादि विग्रह के रूप में भगवान स्वयं प्रकट हो जाते हैं। श्रीरंगनाथ, श्रीवेङ्कटेश, श्रीबद्रीनाथ, जगन्नाथ, मुक्तिनाथ, तथा शालग्राम आदि शिला रूप में भगवान स्वयं व्यक्त अर्चारूप हैं। दूसरी शास्त्र वर्णित भगवद् विग्रह में विधिवत् मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति होती है।

स्वयं व्यक्त मूर्तियों में शालग्राम मूर्ति सबके लिए सुलभ हैं। शालग्राम मूर्ति में भगवान को स्वयं व्यक्त होने के कारण प्रतिष्ठा सम्बन्धी संस्कार करने की आवश्यकता नहीं होती है। उनकी पूजा में मन्त्र और विधि की भी आवश्यकता नहीं है। प्रेमपूर्वक उनका नाम लेकर पञ्चोपचार अथवा षोडषोपचार से पूजन कर ले। जो सात्त्विक भोजन घर में तैयार हो उसे तुलसीपत्र डालकर भगवान शालग्राम को समर्पण कर दे। अन्य अर्चामूर्ति को तीन दिनों तक भोग न लगने पर उनमें देवत्व नहीं रहता है, परन्तु शालग्राम भगवान में ऐसी बात नहीं है। कुछ दिनों तक पूजा अथवा भोग बन्द हो जाने पर भी शालग्राम भगवान में देवत्व रहता ही है। अन्य अर्चामूर्ति का कोई अङ्ग टूट जाने पर उनका पूजन निषिद्ध है क्योंकि उनसे देवत्व निकल जाता है, परन्तु शालग्राम भगवान के फूटकर खण्ड-खण्ड हो जाने पर भी देवत्व रहता ही है और उनकी पूजा ठीक मानी जाती है।

खण्डितं स्फुटितं भग्नं पार्श्वभिन्नं विभेदितम्
शालग्रामशिलाभूतं शैलदोषो भवेन्न हि।।

सन्तान उत्पत्ति का छूतक अथवा मृतक के छूतक होने पर भी शालग्राम मूर्ति का पूजन बन्द न करे। अशौच समाप्त होने पर शालग्राम भगवान का पञ्चामृत में स्नान करा लें और वस्त्र तथा यज्ञोपवित बदल दें।

सूतके मृतके वाऽपि विष्णुं नित्यं तथार्चयेत् ।
शालग्राम शिला स्पृष्ट्वा सद्य एव शुचिर्भवेत्।।
(पराशर स्मृति, नारायणसार संग्रह)

जिस घर में शालग्राम भगवान का पूजन होता है, वहाँ किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता है तथा पूजन करने वाला लोक एवं परलोक का सुख प्राप्त करता है। उस घर के निकट में रहने वाले पशु, पक्षी आदि कल्याण के भाजन होते हैं। शालग्राम पूजन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सद्शूद्रों को भी अधिकार है। नारियों के लिए विशेष रूप से गोपाल भगवान का ही पूजन बतलाया गया है;

परन्तु श्रीवैष्णवी नारी शालग्राम भगवान का पूजन कर सकती है।

असच्छूद्रगतं दासः निषेधं विद्धि मानद।
स्त्रीणामपि च साध्वीनां नैवाभावः प्रकीर्तितः।।

(स्क०पु० ब्रह्म खण्ड ११अध्याय २८श्लोक)

स्त्रियो वा यदि वा शूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियादयः।
पूजयित्वा शिलाचक्रं लभन्ते शाश्वतं पदम् ।।

जोड़ा शालग्राम का पूजन निषेध है, परन्तु जोड़ा में दो का पूजन न करें और विषम में एक का पूजन उत्तम है।

शालग्रामाः समाः पूज्या विषमा न कदाचन।
समेषु न द्वयं पूज्यं विषमेष्वेकमेव हि।।

चरणोदक की अपूर्व महिमा

अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

भगवान शालग्राम का चरणोदक प्रतिदिन पान करें। उससे समस्त पाप नष्ट होते हैं और भगवान की सायुज्यमुक्ति प्राप्त होती है। संसार मल रूप कीचड़ को भगवान के चरणोदक ही नाश करता है। महान् पापी भी भगवान शालग्राम के चरणोदक पीकर शुद्ध हो जाता है। भगवान् के चरणोदक लेते समय ध्यान दें कि एक बून्द भी भूमि पर न गिरे, क्योंकि भूमि पर गिरने से महान पाप होता है। उससे हजारों वर्ष तक जीव को नरक वास करना पड़ता है। अतः चरणोदक (तीर्थ) लेने की विधि है कि वायें हाथ पर दोहरा कर वस्त्र रख लें और उस पर दायाँ हाथ रखकर उसमें चरणोदक लेकर पी जाय। चरणोदक (तीर्थ) तीन बार लेना चाहिए।

वस्त्रं द्विगुणीकृत्य पाणौ पाणि निवेशयेत्।
तस्मिन्तीर्थ प्रतिष्ठाप्य त्रिपिवेद् विन्दुवर्जितम्।।

महान् पापी के मुख में भी यदि मरते समय भगवान शालग्राम का चरणोदक (तीर्थ) प्रवेश कर जाय तो उसे मुक्ति मिल जाती है।

प्राचीन काल में मगध देश में शबर नाम का एक महान पापी था। वह तीर्थ यात्रियों के धन, वस्त्र आदि लूटने तथा प्राणियों की हिंसा में सदा रत रहता था। एक दिन उसकी आयु पूरी होने पर यमराज के दूत उसे ले जाने के लिए आ गये। एक यमदूत ने सर्प बनकर उसे डस लिया। उससे उसकी मृत्यु हो गई। उसी समय एक श्रीवैष्णव भक्त वहाँ आ गये। उन्होंने दयावश तुलसी युक्त शालग्राम भगवान का चरणामृत मृत पापी के मुख में डाल दिया और शालग्राम भगवान को उसकी छाती पर रखकर उसके कल्याणार्थ भगवान से प्रार्थना की। यमदूत यह समझकर वहाँ से हट गये कि यह विष्णुलोक में जाने योग्य बन गया। तदनन्तर विष्णु दूत वहाँ आये और उस मृत व्यक्ति की आत्मा को विमान में बैठाकर वैकुण्ठ ले गये। अतः किसी व्यक्ति को मरणासन्न होने पर उसके पास तुलसी तथा शालग्राम भगवान को रखे और उसे चरणोदक (तीर्थ) पिला दें। उत्तर में वद्रीनारायण से दक्षिण भारत के अंतिम सीमा तक तथा पूर्व में जगन्नाथपुरी से पश्चिम में द्वारिका पुरी तक भारत के सभी मन्दिरों में भगवान शालग्राम का ही चराणोदक भक्तों को मिलता है।

मुक्ति नारायण की यात्रा

मुक्ति नारायण जाने के लिए अनुकूल समय सितम्बर और अक्टूबर मास है क्योंकि उस समय बर्फ का प्रभाव कम रहता है। नेपाल राज्य का एक बड़ा शहर पोखरा है। वहाँ तक छोटी-बड़ी बसें जाती हैं। बिहार सीमा रक्सौल से पार कर जाने पर पोखरा के लिए बसें मिलती हैं। नारायणगढ़ से दो पर्वतों के बीच गण्डकी की तीव्र धारा दर्शन देती है। उसके किनारे से पर्वत के सटे अच्छी सड़क है। जिससे बसें पोखरा जाती हैं। पोखरा समतल जमीन है। वहाँ धान आदि की अच्छी फसलें होती हैं। वहाँ गीता मन्दिर पर ठहरनें की जगह मिल जाती है। पोखरा से ही मुक्तिनारायण के लिए पर्वतीय मार्ग प्रारम्भ होता है। ऊपर की ओर विशेष चढ़ाव है। पोखरा से मुक्ति नारायण पैदल जाने में स्वस्थ व्यक्ति को चार दिन लग जाते हैं। दूसरा मार्ग है जिसमें ७५ किलो मीटर तक कुछ बसें भी जाती हैं वहाँ से पैदल तीन दिन में मुक्ति नारायण पहुँचते हैं। मार्ग में एक बिहार के महात्मा यात्रियों की आवास भोजन, आसन, ओढ़ना आदि द्वारा पूर्ण सेवा करते है। हुलासगंज से चार वैष्णवी महिलायें पोखरा से पैदल मुक्ति नारायण गयी थीं। वे सब लौटने पर पैदल मार्ग में महात्मा के द्वारा मिलने वाली सुविधाओं को मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करती हैं । तीसरा मार्ग वायुयान का है। कुछ दिनों से छोटे-छोटे वायुयान दो पर्वतों के बीच से जोम-सोम तक यात्रियों को पहुँचाते हैं। कुल खर्च वायुयान पर जोम-सोम तक जाने एवं वहाँ से लौटने में नेपाली रुपये से चौबीस सौ लगते हैं। मेघ एवं कुहासा से बचाकर वायुयान जाता है। अत: कभी-कभी उसकी प्रतीक्षा में यात्रियों को कुछ दिन विलम्ब हो जाता है। जोम-सोम से मुक्तिनारायण १२ किलोमीटर है।

जोम-सोम में ठहरने के लिए दो धर्मशालायें हैं वहाँ से मुक्ति नारायण के लिए वाहन में केवल घोड़े मिलते हैं। स्वस्थ व्यक्ति पैदल भी जाते हैं। पथरिली एवं विशेष चढ़ाव होने से मार्ग दुर्गम प्रतीत होता है। घोड़े प्रशिक्षित होते हैं। फिर भी चढ़ने वालों को गिरने का भय रहता है। पैदल अथवा घोड़ो से जाने में भी प्राय: १२ किलो मीटर मार्ग तय करने पर सब लोग अपने को अस्वस्थ अनुभव करने लगते हैं। मुक्ति नारायण में दो तल्ला एक पुरानी धर्मशाला है। वहाँ दो वैष्णव महात्माओं से सर्वविध सेवा प्राप्त होती है। धर्मशाला से एक किलोमीटर की दूरी पर श्रीमुक्ति नारायण भगवान् का मन्दिर है।

चतुर्थ मार्ग हेलीकोप्टर का है। पोखरा से मुक्ति नारायण के पास तक हेलीकाप्टर से यात्रा कर सकते हैं। एक व्यक्ति पर जाने-आने में पन्द्रह हजार से अधिक रुपये व्यय होते हैं।

चिन्तण के कुछ क्षण

१. जीवन पथ पर सिर्फ अकेले ही बढ़ना होता है कोई किसी का साथ नहीं देता। जो देता भी है, वह अस्थायी होता है।

२. मनुष्य के सच्चे साथी उसकी हिम्मत धीरज, साहस हैं, ये ही उसके मित्र हैं। जो समय के रथ को स्वयं ही खींचता है, वही सफल होता है।

३. तमाम मुसीबतों के बावजूद हिम्मत मत हारो। जो गिरेगा, वही उठेगा। जिसने पर्वत पर चढ़ने की कोशिश ही नहीं की वह क्या जाने पर्वत पर आने वाली दिक्कतें, मिलने वाला सुख। एक-एक करके सीढ़ियों पर चढ़ते रहो, कूदो नहीं।

रामायणं वेद सम्मम्

वेद के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं, जो उपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। वेदान्त ही ब्रह्मतत्त्व के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करता है। वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म ही ऋषि मुनियों एवं देवों की आर्त्त पुकार पर वैदिक धर्म की रक्षा एवं विश्व, राष्ट्र तथा समाज में अशान्ति फैलाने वाले दुष्टों के संहार के लिए भूतल पर अवतरित होता है। जब वह परमात्मा अवध में कौसल्या के गर्म से दशरथ के पुत्र रूप में प्रकट हुए, तब उनके दिव्य गुणों एवं रूपों का वर्णन करने वाला वेद भी वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायण के रूप में प्रकट हो गया। वाल्मीकि तमसा नदी में स्नान के लिए गये थे। उसके तट पर युगल कौञ्च पक्षी (नर-मादा) कामासक्त थे। एक व्याधा अपने बाण से उनमें नर पक्षी का बध कर दिया। अपने पति को उस अवस्था में देखकर मादा करुण क्रन्दन करने लगी। परम दयालु वाल्मीकि की दृष्टि उस पक्षी पर पड़ी। मादा को देखकर उनके मुख से शापरूप में सहसा एक श्लोक निकला—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत् क्रोञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

अर्थात् तुमने काम मोहित क्रोञ्च पक्षी के जोड़े में से एक नर पक्षी का बध कर दिया है।

महामुनि वाल्मीकि उसका चिन्तन करते हुए अपने आश्रम पर लौट गये। उसी समय लोक स्रष्टा ब्रह्मा वाल्मीकि से मिलने के लिए उनके आश्रम में आये। वाल्मीकि ने उनका समुचित सत्कार किया। तमसा के तटपर जो घटना घटी थी, वह वाल्मीकि को विस्मृत नहीं हो रही थी। वे बार-बार उसी का चिन्तन कर रहे थे। ब्रह्मा ने उनके मनोभाव को समझकर कहा कि मेरी प्रेरणा से ही तुम्हारे मुख से अनुष्टुप छन्दोवद्ध श्लोक निकला है।

''मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृतेयं सरस्वती''

तुम इसी छन्द में भगवान् श्रीराम का चरित्र चित्रण करो। तुम्हें श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और राक्षसों के जो गुप्त या प्रकट चरित्र अज्ञात होंगे, वे सब लिखते समय ज्ञात हो जायेंगे। तुम्हारे काव्य में एक अक्षर भी असत्य नहीं होगा। इस पृथ्वी पर जब तक नदियों तथा पर्वतों की सत्ता रहेगी तब तक इस संसार में श्रीराम कथा का प्रचार होता रहेगा। ब्रह्माजी वाल्मीकि को ऐसा वरदान देकर चले गये। वाल्मीकि स्नान करके पूर्वाग्र कुशासन पर बैठकर समाधिस्थ हो गए। उस समय श्रीराम, लक्ष्मण आदि के प्रकट तथा गोपनीय चरित्र भी वाल्मीकि के लिए प्रत्यक्षवत् हो गये। उसके अनुसार श्रीरामतत्त्व के प्रत्यक्ष द्रष्टा महामुनि वाल्मीकि ने सात काण्ड, पाँच सौ सर्ग और चौबीस हजार श्लोकों में श्रीराम का चरित्र लिखा।

गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं। उनके एक-एक अक्षर से आरम्भ कर एक-एक हजार श्लोक का निर्माण किया। भगवान् की कृपा से सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा को समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त हुआ था और ब्रह्मा के अनुग्रह से वह वेद वाल्मीकि के मुखारविन्द से रामायण के रूप में अवतरित हुआ।

वेदवेद्य परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना।।

''अत एव स्कन्द पुराण के उत्तरखण्ड में व्यासजी ने रामायण को वेद सम्मत कहा है।

''रामायणं महाकाव्यं सर्व वेदेषु सम्मतम्''

नारायण के द्वारा ब्रह्मा के हृदय में समस्त वेदों का ज्ञान कराने के कारण श्रीमद्भागवत के प्रथम श्लोक से ब्रह्मा आदि कवि कहे गये हैं।

तेने ब्रह्म हृदाय आदि कवये

ब्रह्मा की प्रेरणा से प्रथम छन्दोवद्ध रामायण लिखने के कारण वाल्मीकि लोक में आदि कवि के

नाम से प्रसिद्ध हुए। वेदों में रामचरित्र सूत्र में हैं—

''अर्वाची सुभगेभव सीते''। ''वन्दामहे त्वा''

(ऋग्वेद-३-२-९)

''अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विष्ये शखे हन्तः''

(ऋग्वेद १२-२१-६)

रामायण में श्रीराम चरित्र विस्तारपूर्वक लिखा गया है। इसलिए वेदार्थ को यथार्थ स्वरूप में समझने के लिए रामायण का सहयोग लेना आवश्यक हो जाता है।

रामायण का पाठ करने तथा सुनने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं। जो जिस फल की इच्छा से सुनता है उसे वह फल अवश्य प्राप्त होता है।

धर्मार्थ काममोक्षाणां साधनं च द्विजोत्तमाः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या रामायण परामृतम् ।।

महान् पापी का भी कल्याण करने की पूर्ण सामर्थ्य रामायण में है।

कलियुग में एक कलिक नाम का व्याध पर नारी और पराये धन के अपहरण में लगा रहता था। उसके लिए उसने अनेक हत्यायें भी की थी। सौबीर नगर के उपवन में केशव भगवान का विशाल मंदिर था। उसके शिखर पर अनेक स्वर्ण कलश थे। कलश के लोभ से व्याध उस मंदिर में गया। शिखर पर चढ़कर कलश उतारने की भावना उसमें हो गई। अचानक उस मंदिर में भजन करने वाले उतंक मुनि पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह व्याध सोचा कि यह महात्मा मेरे कार्य में बाधक है। अत: इसे मार डालूँ। व्याध मुनि की छाती पर एक पैर रखकर दबाया और एक हाथ में तलवार लेकर उनके गला काटने के लिए तैयार हो गया। महात्मा भगवान् का स्मरण करते हुए यह कहने लगे कि मनुष्य दूसरे का धन अपहरण करके जो अपनी स्त्री आदि का पोषण करता है, वह गलत करता है, क्योंकि वह अन्त में उन सब को छोड़कर अकेला ही परलोक चला जाता है। मनुष्य जब तक कमाकर धन देता है तभी तक उसके पुत्र, भाई, बन्धु प्रेम करते है। जब उसे पाप कर्म का फल रूप दुखों को भोगने का समय आता है तो वह अकेला ही भोगता है। महात्मा उतंक के वचनों को सुनकर कलिक व्याध भय से व्याकुल हो उठा और उनके पास से दूर हट गया तथा उन्हीं की ओर हाथ जोड़कर बार-बार कहने लगा कि हे मुने! मेरे अपराध को क्षमा करें। पुन: उसने महात्मा से पूछा कि मैंने जीवन भर पाप किया है। उन पापों से छुटकारा कैसे पा सकूँगा?

महात्मा उतंक ने कहा कि व्याध तुम भक्ति भाव से आदर पूर्वक रामायण की कथा सुनो उसके श्रवण मात्र से तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे। कलिक ने उतंक मुनि से नव दिन रामायण की कथा श्रवण किया, जिससे वह शीघ्र पापमुक्त हो गया। इस प्रकार रामायण कथा का अपूर्व प्रभाव देखा गया। सनातन धर्म पालन एवं सदाचार की विशेष शिक्षा हमें रामायण से मिलती है। अत: सभी लोगों को रामायण से प्रेम करना चाहिए। ●

दैनिकचर्या को आदर्श बनानेवाला सात्त्विक तत्त्व : विद्या

'विद्या तत्र सुदुर्लभा।' मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी विद्याहीन जीवन पशु के समान हो जाता है, अत एव मनुष्य-शरीर की अपेक्षा भी विद्वान् का शरीर श्रेष्ठ है। विद्या मनुष्य का परम धन है। दूसरे धन को चोर चोरी करके ले सकता है, परन्तु विद्या को कोई चुरा नहीं सकता। इसको जितना ही दान करें, उतना ही यह वृद्धि को प्राप्त होती है। ●

श्रीरामानुजाचार्य जी का जीवन वृत्त एवम् उनका दार्शनिक विचार

मद्रास से चौदह कोस दक्षिण-पश्चिम के कोण पर महाभूतपुरी नाम से प्रसिद्ध एक नगर है। जहाँ हारीत गौत्रीय श्री केशवाचार्य नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम कान्तिमती था।

पार्थसारथि भगवान की आराधना से कान्तिमती के गर्भ से १०१७ खृष्टाब्द के पिङ्गल सम्वत्सर वैशाख मास शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि वृहस्पतिवार कर्क लग्न में एक बालक का जन्म हुआ, जिनका नाम ज्योतिषियों ने रामानुज रखा। वैकुण्ठनाथ के शय्या स्वरूप श्रीशेषजी प्रथम बार द्वापर में श्रीबलदेवरूप में आये थे। वे ही कलियुग में श्रीरामानुज के रूप में प्रकट हुए।

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयोलक्ष्मणस्तथा।
तृतीयोबलरामश्च कलो रामानुजो मुनिः।।
द्वापरान्ते कलेरादौ पाखण्डप्रचूरेजने।
रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्तकः।।
(वृ०ब्र०सं०)

श्रीकेशवाचार्य ने उन्हें विधिपूर्वक सभी जात-कर्मादिसंस्कार कराया। जैसे श्रीलक्ष्मण जी का बाल्यकाल से ही श्रीराम के चरणों में निर्मल प्रेम था वैसे ही शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य जी का भी बाल्यकाल से ही भगवान एवं भागवतों में पूर्ण निष्ठा थी। श्रीकेशवाचर्य ने सोलह वर्ष की अवस्था में उन्हें विवाह कर दिया। कुछ ही काल के बाद श्रीकेशवाचार्य जी का शरीरान्त हो गया।

ब्रह्म, जीव और माया के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान वेदान्तशास्त्र से प्राप्त होता है। श्रीरामानुजाचार्य शेषावतार होने के कारण सभी ज्ञान से परीपूर्ण थे फिर भी लोक शिक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मण की तरह वे भी वेदान्त अध्ययन के लिए श्रीकाञ्ची आये और वहाँ श्री यादवप्रकाश से वेदान्त पढ़ने लगे। श्रीयादवप्रकाश श्रीरामानुजजी को मेधावी छात्र समझकर उनसे बहुत प्रेम करते थे। वे कट्टर अद्वैतवादी थे। एक दिन श्रीयादवप्रकाश ने अपने प्रियतमशिष्य श्रीरामानुज को तेल लगाने के लिए कहा। श्रीरामानुज जी यादवप्रकाश को तेल लगाने लगे। उसी समय एक छात्र पढ़ने के लिए आया। श्रीयादवप्रकाश उस छात्र को छान्दोग्योपनिषद पढाने लगे। उस उपनिषद् के ''तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी'' इस मन्त्र में कप्यासं शब्द आया है। यादवप्रकाश जिसका अर्थ वानर के अपान भाग किया। वह पूरे मन्त्र का अर्थ बताया कि उस सुवर्ण वर्ण के समान पुरुष की दोनों आँखे वानर के अपान भाग के समान है, यह व्याख्या सुनकर तेल लगाते हुए श्रीरामानुज की आँखों से अश्रु धारा गिरने लगी। अश्रु का वह गरम जल यादवप्रकाश के पैर पर गिरा। उस गरम जल से यादव प्रकाश को अनुभव हुआ कि श्रीरामानुज की आँखों से निकला हुआ जल मेरे पैर पर गिरा है। अत: उसने श्रीरामानुजजी से पूछा कि तुम्हारे आँखों से अश्रु क्यों गिर रहा है!

श्रीरामानुजजी ने उत्तर दिया कि आपने ''कप्यासं'' का अर्थ वानर के अपान भाग करके भगवान के नेत्रों को उससे उपमानित किया। इससे मैं बड़ा मर्माहत हुआ हूँ। क्योंकि सच्चिदानन्दमय भगवान की आँखों को वानर के अपान भाग से उपमानित करना महान अन्याय है। यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज से कहा कि तुम इससे भिन्न तथा सुन्दर अर्थ कर सकते हो, तब स्वामी रामानुजाचार्य जी ने कहा कि आपके आशीर्वाद हो तो मैं करुँ!

यादवप्रकाश की अनुमति मिल गयी। श्रीरामानुज स्वामी ने 'कप्यासम्' का अर्थ किया कि क=जल, उसको पीने पाला सूर्य, अर्थात् जो अपने किरणों द्वारा जल को पीता है, उस सूर्य से विकसित होने वाला कमल कप्यास का अर्थ है। अत: पूरा मन्त्र का अर्थ हुआ कि उस सुवर्णवर्ण पुरुष की आँखे सूर्य से विकसित होने वाला कमल के समान सुशोभित हैं।

यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज जी के अर्थ से प्रसन्नता प्रकट नहीं की। उस दिन से उन पर यादव-प्रकाश का प्रेम कम गया। पुन: एक दिन तैत्तीरीयोपनिषद् के ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इस मंत्र को जब यादवप्रकाश ने ब्रह्म को असत्यव्यावृत, ज्ञानव्यावृत्त और परिच्छिन्नव्यावृत्त कहकर व्याख्या की तब श्रीरामानुजजी यादवप्रकाश का प्रतिवाद करने के लिए उद्यत हुए और उन्होंने कहा कि ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। अर्थात् सत्यत्व, ज्ञानत्व और अनन्तत्व ये सब भगवान के गुण हैं।

श्रीरामानुजाचर्य की इस व्याख्या से यादवप्रकाश को विशेष भय हो गया कि यह अद्वैतमत का खण्डन कर द्वैतमत को स्थापित करेगा। अत: यादवप्रकाश ने श्रीरामानुजाचार्य को द्वेष दृष्टि से देखते हुए, उन्हें मरवाने का षड्यन्त्र रचा। एतदर्थ श्रीरामानुजाचार्य को ऐसी जगह ले गया, जहाँ उन्हें बचना सम्भव नहीं था; परन्तु भक्त की रक्षा भगवान् करते हैं इसलिए भगवान् वरदराज श्रीलक्ष्मी के साथ व्याध दम्पति का रूप धारण कर श्रीरामानुजाचार्य को बचा लिए। वे भगवत्कृपा से सकुशल काञ्चीपुरी में लौट गये। उस दिन से श्रीरामानुज जी को श्रीवरदराज भगवान् की सेवा में विशेष निष्ठा हो गयी। श्रीरामानुजाचार्य अपने घर पर ही अध्ययन करने लगे। उन्होंने यादवप्रकाश के द्वारा हत्या के लिए किये गये षडयन्त्र की किसी से चर्चा नहीं की। यादवप्रकाश श्रीरामानुज की नम्रता और सुशीलता को देखकर मन ही मन लज्जित हुए और उन्होंने उससे कहा कि आज से तुम हमारे यहाँ पढ़ा करो। अत: श्रीरामानुजाचार्य पुन: यादवप्रकाश के यहाँ जाकर पढ़ने लगे।

राजकुमारी को प्रेतत्व निवृत्ति

यादवप्रकाश भूत-प्रेत ग्रस्त मनुष्यों को मन्त्र बल से स्वस्थ कर दिया करते थे। उनकी यह प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी।

एक समय श्रीकाञ्चीपुर की राजकुमारी भूत से पीड़ित हुई। चारों ओर से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्त्र शास्त्री निमन्त्रित किये जाने लगे; परन्तु कोई भी राजकुमारी को निरोग न कर सका। अनन्तर वेदान्ताचार्य यादवप्रकाश बुलाये गये। भूत-ग्रस्त राजकुमारी यावदप्रकाश को देखते ही बड़े जोर से हँसी और बोली कि 'तुम्हारे मन्त्र-तन्त्र से यहाँ कोई फल होने वाला नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो, घर लौट जाओ'? उसकी बातों पर ध्यान न देकर यादवप्रकाश एक पहर तक मन्त्रोच्चारण करते रहे; परन्तु इससे कुछ फल नहीं हुआ। तब भूत ने कहा क्यों कष्ट उठाते हो। तुम हमसे भी अधम हो, अत: तुम हमको यहाँ से हटा नहीं सकते। यदि तुम यह चाहते हो कि मैं इस कोमलाङ्गी राजकुमारी को छोड़कर हट जाऊँ तो तुम्हारे शिष्यों में जो सबसे कम अवस्था का आजानुबाहु तथा महान प्रतिभाशाली श्रीमान् रामानुज है, उसे यहाँ बुलाओ। मेघाच्छन्न अमावस्या की रात्रि का घोर अन्धकार जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार उस महानुभाव के दर्शन से मैं हट जाऊँगा।

यादवप्रकाश ने उसी समय श्रीरामानुज को वहाँ बुलवाया। भूत को राजकुमारी के शरीर से हट जाने के लिए उनके द्वारा कहे जाने पर उस भूत ने

कहा आप कृपा करके मेरे सिर पर अपना चरण रखिये, मैं चला जाऊँगा। आप इस दास की अभिलाषा को पूर्ण करें। गुरु की आज्ञा से श्रीरामानुज ने राजकुमारी के सिर पर पैर रखा और कहा कि राजकुमारी को छोड़ दो और तुमने राजकुमारी को छोड़ दिया है, इसका भी प्रमाण देते जाओ। भूत ने कहा यह मैं छोड़ता हूँ, इसके प्रमाण में सामने पीपल के वृक्ष की शाखा को मैं तोड़ता हूँ। देखते-देखते पीपल की एक शाखा टूट गई और राजकुमारी निद्रा से उठी हुई के समान चारों ओर देखने लगी।

इस अद्भुत कार्य से श्रीरामानुजाचार्य जी का सर्वत्र सुयश फैल गया। इस घटना के पश्चात् यादवप्रकाश अध्यापन कार्य करने लगे। एक दिन ***'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'*** (छान्दो०) और ***'नेह नानास्ति किञ्चन'*** (कठो०) इन दोनों मन्त्रांशों की व्याख्या के समय यादवप्रकाश ने अति सुन्दर रूप से आत्मा और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की।

उनकी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुज के अतिरिक्त और सभी शिष्य प्रसन्न हुए। पाठ समाप्त होने पर श्रीरामानुज ने दोनों मन्त्रांशों के विषय में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकाशित की। ''सर्व खल्विदं ब्रह्म'' इसका अर्थ निखिल जगत् ब्रह्मस्वरूप है। यदि ऐसा न होता तो उसका ''तज्जलान:'' विशेषण न होता। यह जगत् ब्रह्म से उत्पन्न है, ब्रह्म द्वारा जीवित है और अन्त में ब्रह्म में ही लीन हो जाता है इसी कारण इसे ब्रह्ममय कहा जाता है। मछली जल से उत्पन्न होती है, जल के ही द्वारा जीवित रहती है और जल में ही लय होती है, परन्तु वह कभी जल नहीं हो सकती। इसी प्रकार जगत् कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। ''नेहनानास्ति किञ्चन'' इसका अर्थ एक से अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं है ऐसा नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह है कि संसार में वस्तु समूह पृथक-पृथक नहीं हैं। जिस प्रकार एक सूत में कई मोती मिलकर एक माला हो जाती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएँ ब्रह्मरूपी सूत्र में आबद्ध होकर जगत् के रूप में परिणत होती है। अनेक केवल एक में मिलकर एकाकार धारण किये हुए हैं। इससे अनेकत्व में कोई हानि नहीं होती।

इस व्याख्या को सुनकर यादवप्रकाश बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीरामानुज से कहा यदि हमारी व्याख्या तुम्हें उचित नहीं जान पड़ती है, तो तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नहीं और वे गुरु को प्रणाम करके अपने घर चले गये।

श्रीमहापूर्ण स्वामी से दीक्षा ग्रहण

वैश्य कुलोत्पन्न काञ्चीपूर्ण नाम के एक महात्मा थे। उन्हें बाल काल से ही बरदराज भगवान के चरणों में विशेष प्रेम था वे अभिमान रहित होकर अनवरत वरदराज की प्रसन्नता के लिए कर्म करते थे। गरमी के दिनों में शीतल जल सिक्त पंखा हाथ में लेकर वरदराज भगवान के पास डुलाते रहते थे। सांसारिक प्रपञ्चों से मुक्त होकर भगवान की सेवा में संलग्न रहने वाले निर्मल हृदय श्रीकाञ्चीपूर्ण से भगवान बात करते थे।

श्रीरामानुजाचार्य जी सैद्धान्तिक विरोध के कारण यादव प्रकाश से अलग हो गये थे। वे घर पर ही शास्त्र का चिन्तन करते रहते थे। एक दिन महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्ण उनके घर के पास से जा रहे थे। श्रीरामानुजाचार्य ने उनका दर्शनकर अपने को भाग्यशाली माना। श्रीकाञ्चीपूर्ण से श्रीरामानुजाचार्य ने शिष्य बनाने के लिए आग्रह किया; परन्तु श्री काञ्चीपूर्ण ने कहा कि मैं उसके योग्य नही हूँ। श्री रामानुजाचार्य में विशेष भक्ति का लक्षण प्रकट हो रहा है। अत: श्रीकाञ्चीपूर्ण स्वामी से कहा कि भगवान आपसे बात करते हैं। अत: आप श्रीवरदराज भगवान से पूछकर बतलाये कि मैं किन से पञ्च

संस्कार ग्रहण करूँ। श्रीकाञ्चीपूर्ण ने भगवान से पूछकर कहा कि उनका आदेश है कि श्रीमहापूर्ण स्वामी से शिष्य बनें।

महापूर्णाचार्य महात्मानं समाश्रय गुणाश्रयम्।।

श्रीमहापूर्ण स्वामी श्रीरङ्गम् रहते थे।

दीक्षा एवं संन्यास

श्रीरङ्गम् के भक्तों ने श्रीमहापूर्ण स्वामी से काञ्ची जाने के लिए प्रार्थना की। उनका उद्देश्य था कि श्रीरामानुजजी को दीक्षित कर श्रीयामुनाचार्य के सिद्धान्त के प्रचारार्थ उन्हें श्रीरङ्गम ले आवें। श्रीमहापूर्ण स्वामी काञ्ची के लिए प्रस्थान कर दिए। मार्ग में मदुपरान्त में एक विष्णु भगवान के मन्दिर के पास तालाब में स्नानार्थ ठहर गये। इधर काञ्ची से श्रीरामानुजाचार्य उनसे दीक्षा के लिए जा रहे थे। वे भी वहाँ पहुँच गये। श्रीमहापूर्ण स्वामी का दर्शन कर श्रीरामानुजजी कृतकृत्य हो गये। स्नान के बाद श्रीरामानुजजी ने महापूर्ण जी से वैष्णवी दीक्षा के लिए प्रार्थना की । श्रीमहापूर्ण जी ने कहा कि काञ्ची चलकर श्रीवरदराज भगवान की सन्निधि में दीक्षा कार्य सम्पन्न होगा। श्रीरामनुजजी ने उनसे कहा कि माहत्मन्! हमको एक मुहूर्त्त का भी बिलम्ब असह्य मालूम हो रहा है।

मृत्यु का कुछ ठिकाना नहीं है-

स्वपन्तं वापि भुंजानं गच्छन्तमपि वर्त्मनि।

युवानमपि बालं वा स्ववंशे कुरुते विधिः।।

सोये हुए, भोजन करते हुए, मार्ग में जाते हुए, युवा हो अथवा बालक हो मृत्यु सब अवस्था में अपने वश में कर लेती है। अतः आप इसी समय अपने चरणों में आश्रय दें। अतः श्रीमहापूर्ण स्वामी जहाँ ठहरे हुए थे, वहीं विष्णु मन्दिर में श्रीरामानुज जी को वैष्णवी दीक्षा दे दी। तदनन्तर काञ्चीवरम् आ गये।

संन्यास धारण

श्रीरामानुजाचार्य के हृदय में सतत यह भाव बना रहता था कि मैं किसी प्रकार परिवार से अलग हो श्रीविष्णु भगवान से विमुख जीवों के उद्धारार्थ कर्म करूँ। भगवत्कृपा से कतिपय कारण वश श्रीरामानुजाचार्य जी २० वर्ष की अवस्था में अपनी पत्नी को श्वसुरगृह भेजकर संन्यास धारण कर लिए। श्रीवैष्णव परम्परा के संन्यासी शिखा, यज्ञोपवीत और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण कर हाथ में त्रिदण्ड रखते हैं। मन, वचन और शरीर को अपने वश में रखने के उद्देश्य से त्रिदण्ड धारण किया जाता है अर्थात् मन से किसी प्रकार के गलत न सोंचे, वचन से किसी को कष्ट न दे और शरीर से किसी को पीड़ा न पहुँचाये

श्रीरामानुजाचार्य के शिक्षागुरु यादवप्रकाश थे। वे सैद्धान्तिक मतभेद के कारण श्रीरामानुजाचार्य जी को अपने पास से अलग कर दिये थे। किन्तु भगवत्कृपा से वे ही यादवप्रकाश रामानुजाचार्य के अलौकिक प्रभाव को जानकर उनसे श्रीवैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर संन्यासी हो गये। उनका नाम गोविन्द दास पड़ा।

श्री आचार्यजी के पाँच गुरु

१- श्रीमहापूर्ण स्वामी ने श्रीरामानुजाचार्य को पञ्च संस्कार करके सिद्धित्रय, गीतार्थ-संग्रह और आगम प्रामाण्यम् आदि ग्रन्थों का बोध कराया।

२- श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने श्रीआचार्यजी को १८ बार मन्त्रार्थ रहस्य का उपदेश किया है।

३- श्रीमालाधर स्वामी से श्रीआचार्य जी ने श्रीशठकोपसूरि निर्मित सामवेद के सारभूत सहस्रगीति का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किया था।

४- श्रीवररङ्गपूर्ण स्वामी ने श्रीआचार्यजी को

वेदान्त का सारगर्भित रहस्य का उपदेश किया।

५- श्रीशैलपूर्ण स्वामी ने महर्षि वाल्मीकि निर्मित रामायण का तात्त्विक ज्ञान श्रीआचार्य जी को दिया।

श्री आचार्यजी का दार्शनिक सिद्धान्त

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य के प्रादुर्भाव से पूर्व, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता का गलत अर्थ करके आध्यात्मिक धरातल पर भ्रम फैलाया गया कि जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म निर्गुण है और ज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न स्वामी रामानुजाचार्य जी ने उन्हीं प्रस्थानत्रयी (गीता उपनिषद और ब्रह्मसूत्र) का भाष्य लिखकर स्पष्ट कर दिया कि तीन तत्त्व हैं चित् अचित् और ईश्वर। चित् का अर्थ है जीवात्मा जो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि इन पाँचों से विलक्षण है। वह आनन्द स्वरूप, नित्य अणु अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवयव, निर्विकार, ज्ञानाश्रय और सर्वेश्वर का शरीर होने से उनसे नियाम्य, धार्य और उसका शेष है।

अचित् कहते हैं ज्ञानशून्य को उसको जड़ प्रकृति, माया और अविद्या शब्द से वर्णन किया गया है। ज्ञानशून्य होने से जड़, विकार उत्पन्न करने के कारण प्रकृति, देह में आत्मबुद्धि, परतन्त्र आत्मा में स्वतन्त्रबुद्धि, अनीश्वर में ईश्वर बुद्धि आदि विपरीत बुद्धि उत्पन्न करने के कारण अविद्या तथा सृष्टि के विचित्र कार्यों को करने से माया कहते है। माया मिथ्या नहीं है, यह परिणाामी है। स्थूल जगत् का प्रतिक्षण परिवर्त्तन होता रहता है। सूक्ष्म पर जाकर विराम कर जाता है। प्रलय के बाद उसी सूक्ष्म से स्थूल की सृष्टि होती है। जगत् के साथ जीव का सम्बन्ध मिथ्या है। वस्तुत: जगत् मिथ्या नहीं है।

जड़ चेतन का समुदाय जगत् है, जगत् का सृजन पालन और संहार करने वाले को ब्रह्म कहते हैं। वही सर्वेश्वर विष्णु, राम, कृष्ण आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। जड़ चेतनमय जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म सबकी आत्मा है। वह अनन्तकल्याण गुणों एवं विभूतियों से युक्त है, इसलिए सगुण कहा जाता है। प्राकृत सत्व, रज और तम ये तीनों गुण ब्रह्म में नहीं हैं अत: वह निर्गुण है। सूक्ष्म जड़चेतन से विशिष्ट ब्रह्म कार्य है। अत: विशिष्टाद्वैत है।

कर्म एवं ज्ञान अङ्ग है और भक्ति अङ्गी है। भक्ति के बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है। ब्रह्म भक्ति से ही प्रसन्न होकर परमपद वैकुण्ठ देते हैं।

श्रीरामानुजाचार्य जी संन्यासियों में प्रधान थे इसलिए वे यतिराज, यतीन्द्र आदि विशेषण से विभूषित किए गए हैं। यतिराज श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने ब्रह्म, जीव और माया के सम्बन्ध में गलत निर्णय देने वाले पर मताबलम्बी पण्डितों को भारत में सर्वत्र घूम-घूमकर शास्त्रार्थ में परास्त किया।

अत एव वेदान्ताचार्य ने तत्त्वमुक्ताकलाप में कहा है कि—

गाथा तथागतानां गलति
गमनिका कापिलो क्वापि लीना,
क्षीणा काणादवाणी
द्रुहिणहरगिरस्सौरभं नारभन्ते।।
क्षामा कौमारिलोक्तिजंगति
गुरुमतं गौरवाद् दूरवान्तं।
का शङ्का शङ्करादेर्भजति
यतिपतौ भद्रवेदीं त्रिवेदीम् ।।

उन्होंने सभी जगह भगवान् विष्णु के मन्दिर एवं रामानुज मठ की स्थापना करायी है। उत्तर भारत में द्वारका, मथुरा, अयोध्या, मुक्तिनारायण, बदरिका-श्रम, नैमिषारण्य, पुष्कर, वृन्दावन आदि दिव्य स्थानों का दर्शन करते हुए शारदापीठ कश्मीर पहुँचे, वहाँ

आपके वैदुष्य से प्रभावित होकर भगवती शारदा ने आपको श्रीभाष्यकार की पदवी से विभूषित किया।

यतिराज श्रीरामानुजाचार्य ने निम्नलिखित सात पुस्तकों का प्रणयन किया।

(१) श्रीभाष्य (२) गीताभाष्य (३) वेदार्थ संग्रह (४) वेदान्तदीप (५) वेदान्तसार (६) गद्यत्रय और (७) नित्याराधन।

श्रीरामानुज स्वामी के समय में भक्तों ने भूतपुरी में श्रीयतिराज स्वामी की मूर्ति तैयार करायी। उसमें श्रीस्वामीजी ने अपनी शक्ति का आधान किया। तदनन्तर मन्दिर तैयार कर मूर्ति स्थापित हुई।

श्रीयतिराज स्वामी के अनेक प्रतिभाशाली शिष्यों ने इस भूतल पर विशिष्टाद्वैत दर्शन का आलोक देते हुए श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार किया। तदनन्तर श्रीयतिराजस्वामी श्रीरङ्गभगवान् के दिव्य चरणों की सन्निधि में रहने लगे। उनकी अवस्था देखकर वहाँ के भक्तों ने आग्रह किया कि आपका दर्शन सदा मिलता रहे एतदर्थ अपनी प्रतिकृति बनवाने का आदेश दिया जाय।

स्वामी जी ने आदेश दिया। भक्तों ने उनकी मूर्ति बनवायी। उसमें श्रीस्वामीजी ब्रह्मरन्ध्र को सूंघकर अपनी शक्ति दी। वह मूर्ति श्रीरङ्गम् में स्थापित है। श्रीयतिराज स्वामी १२० वर्ष की अवस्था में खृष्टाब्द १११६ माघशुक्ल दशमी शनिवार के मध्याह्न में अपने गुरु श्री महापूर्ण स्वामी की चरणपादुकाओं का दर्शन करते हुए परमपद के लिए प्रस्थान किए।

त्रिदण्डहस्तं सितयज्ञसूत्रं
काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ।
रथाङ्गशङ्खाङ्कित बाहुमूलं
रामानुजार्यं शरणं प्रपद्ये।।

श्रीभाष्यकार द्वारा अवश्य आचरणीय उपदेश

(१) पूर्वाचार्यों के उपेदशमय वाक्यों पर विश्वास करके आचरण करना चाहिए।

(२) भगवान् के मन्दिर, गुरुगृह और श्रीवैष्णव निवासी की ओर पैर पसारकर कभी न सोये।

(३) सोने के पूर्व और जगाने के पश्चात् गुरुपरम्परा का पाठ करे।

(४) किसी भी श्रीवैष्णव के आगमन की सूचना मिलने पर उसकी आगवानी करने को जाना चाहिए।

(५) भगवान् विष्णु के दिव्यमन्दिर, विमान, गोपुर आदि को देखते ही सिर झुकाकर उनको प्रणाम करे।

(६) विष्णु पादोदक अथवा किसी भक्तका श्रीपादतीर्थ अथवा शुद्ध पेय जल को अवैष्णव के सामने ग्रहण न करे।

(७) तत्त्वत्रय, ब्रह्म, जीव और प्रकृति का रूप रहस्यत्रय मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र और चरममन्त्र का जिसे भली-भाँति ज्ञान नहीं है ऐसे श्रीवैष्णव का श्रीपादतीर्थ कभी न लें।

(८) भगवत्सन्निधि में भागवतों के दिये हुए तीर्थ प्रसाद को ''दास आज उपवास व्रत में है'' कहकर कभी न त्यागे उसे बड़ी श्रद्धा भक्ति से ले।

(९) सर्वपापहारी भगवत्प्रसाद को कभी उच्छिष्ट न समझे।

(१०) श्रीवैष्णवों के सामने अपनी प्रशंसा न करे।

(११) श्रीवैष्णवों की सन्निधि में किसी का तिरस्कार भी न करे।

(१२) २४ घंटे में कम से कम एक घंटा तो नित्य अवश्य ही आचार्य गुणगान करे।

(१३) जो पुरुष रात-दिन परनिन्दा किया करता हो उससे कभी बातचीत न करे।

उर्मिला और श्रीलक्ष्मण

रामायण में रामसेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजी का तथा उनकी धर्मपत्नी श्री उर्मिला देवी जी के चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि उर्मिला के चरित्र तो रामायण में कहीं वर्णित ही नही है। फिर वह अनुपम कैसे हो गया? वास्तव में उनके चरित्र के सम्बन्ध में कवि का मौनावलम्बन ही चरित्र की परम उच्चता का सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कवि की लेखनी चित्रण करने में अपने को असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीराम के साथ वन जाने के लिये आग्रह करती हैं और न ले जाने पर प्राण-परित्याग के लिये प्रस्तुत हो जाती हैं, यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने वचनों को पलटकर उन्हें साथ ले गये। श्रीराम ने जो सीताजी को घर-नैहर में रहने का आदेश दिया था, वह तो लोक-शिक्षा,सती-पतिव्रता के परम आदर्श की स्थापना और पत्नी के प्रति पति के कर्तव्य की सत् शिक्षा के लिए था। वास्तव में सीता को श्रीरामजी वन में ले जाना ही चाहते थे, क्योंकि उनके गये बिना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए बिना उसकी मृत्यु असम्भव थी, जो अवतार धारण का एक प्रधान कार्य था। श्री सीताजी साक्षात् जगन्नायिका और श्रीराम सच्चिदानन्दघन जगदीश्वर थे। ये उनसे अलग कभी रह ही नहीं सकती। केवल पातिव्रत्य की बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिला की भाँति अयोध्या में रह जातीं। उर्मिला सीताजी की छोटी बहन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराम में अनुरक्ता और सेवाव्रत-धारिणी थीं वैसे ही उर्मिला भी थीं। वे भी सीता की भाँति ही साथ जाने के लिए प्रेमाग्रह कर सकती थीं, परन्तु उनके घर रहने में ही श्रीरामकाज में सुविधा थी जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पति का एकमात्र धर्म था और जिसमें उर्मिला पूर्ण सहमत और सहासक थीं। इन्द्रजीत मेघनाद को वरदान था जो महापुरुष लगातार बारह वर्ष तक फल-मूल खायेगा, निद्रा का त्याग करेगा और अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करेगा, उसी के हाथों से मेघनाद का मरण होगा। इसलिये जैसे रावण वध में कारण बनने के लिए सीताजी का श्रीरामलीला में सहयोगिनी बनकर वन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मण जी का भी रामलीला में शामिल होने के लिए तीव्र महाव्रत-पालन पूर्वक मेघनाद वध के लिये वन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिलाजी को भी रामलीला को सुचारु रूप से सम्पन्न कराने के लिये ही, जो दम्पत्ति के जीवन का व्रत था, घरपर रहना आवश्यक था। उर्मिला जी साथ जाती तब श्रीलक्ष्मणजी का महाव्रत पालन करना कठिन था और वे घर पर रहते, तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजी ने उर्मिला जी को अवश्य समझा दी होगी या महान् विभूति होने के कारण वे इस बात को स्वयं समझती ही होंगी। इसी से उन्होंने पति के साथ जाने के लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत धर्म का वैसा ही पालन किया, जैसा श्रीसीताजी ने साथ जाने के लिये प्रेमाग्रह करके किया था। घर रहने में ही पति श्रीलक्ष्मण जी का सेवाधर्म सम्पन्न होता है, जिन श्रीराम की सेवा के लिए लक्ष्मण जी अवतीर्ण हुए थे, वह सेवाकार्य इसी में सफल होता है- यह बात जानने के बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिला कैसे कुछ कह सकती थीं। वे आजकल की भाँति भोग की भूखी तो थीं ही नहीं। पति की धर्मरक्षा में सहायक होना ही पत्नी का धर्म है, इस बात को वे खूब समझती थीं और वहाँ उर्मिला जी ने वही

किया। लोग कहते हैं कि लक्ष्मण बड़े निष्ठुर थे, राम तो सीता को साथ ले गये, परन्तु लक्ष्मण ने तो उर्मिला से बात तक नहीं की। पर वे क्या बात करते, वे इस बात को खूब जानते थे कि मेरा और मेरी पत्नी का एक ही धर्म है। मेरे धर्मपालन में मद्गतप्राणा कर्त्तव्य-परायणा प्रेममयी उर्मिला को सदा ही बड़ा आनन्द मिलता है वह धर्म के लिए सानन्द मेरा विछोह सह सकती है। जनकपुर से व्याहकर आने के बाद बारह वर्षों में लक्ष्मणजी की अनुगामिनी सती उर्मिला ने अपना राम-सेवा-धर्म निश्चय कर लिया था, उसी निश्चय के अनुसार पति को रामसेवा में भेजने के लिये वीराङ्गना उर्मिला भी उसी प्रकार सहमत और प्रसन्न थीं, जैसे लक्ष्मण, माता वीर प्रसविनी देवी सुमित्रा जी प्रसन्न थीं। धर्म-परायण वीराङ्गनाएँ अपने पति पुत्रों को हँसते-हँसते रणाङ्गण में भेजा ही करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिला ने भी किया। अवश्य ही उर्मिला कुछ बोली नहीं, परन्तु यहाँ न तो बोलने का अवकाश था और न धर्म में नित्य हार्दिक सम्मति होने के कारण बोलने की आवश्यकता ही थी तथा न मर्यादा ही ऐसी आज्ञा देती थी। सेवा-धर्म में तत्पर नि:स्वार्थ सेवक का तुरंत करने योग्य प्रबल मनचाहा स्वकार्य सामने आ पड़ने पर सलाह-मशविरे के लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसकी सह धर्मिणी पत्नी भी इससे दु:ख मानती है; क्योंकि वह अपने पति की स्थिति से भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक त्यागपूर्ण महान कार्य का अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकी जी को ले गये। परन्तु परतन्त्र सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिला को अपने साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता, उन्हें श्रीरामजी की सम्मति लेनी पड़ती। श्रीरामजी वहाँ वन में सीताजी को साथ ले जाने में ही आपत्ति करते थे, वहाँ वे उर्मिला को साथ ले जाने में कैसे सहमत होते। जो कार्य स्वामी की रुची के प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवक के चित्त में उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार पति की रुचि के प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नी के हृदय में नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थी। लक्ष्मण इसको जानते थे। धर्मपालन में उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मण सेवा के लिये वन जाना चाहते थे, शैर के लिए नहीं। पत्नी को साथ ले जाने से उसकी देखभाल में भी इनका समय जाता तथा दो स्त्रियों के संभालने का भार श्रीराम पर पड़ता। सेवक अपने स्वामी को संकोच में कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बात को जरुर समझते थे। अत एव उन्होंने कोई निष्ठुरता का बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसी में लक्ष्मण जी और उर्मिला जी दोनों की सच्ची महिमा है।

वनवास में श्रीलक्ष्मण के व्रतपालन का महत्व देखिये। वे दिन-रात श्रीसीताराम के पास रहते हैं । कंद-मूल फल लाकर देना, पूजा की सामग्री जुटा देना, आश्रम को झाड़ना बुहारना, वेदिका पर चौका लगा देना, श्रीसीताराम की रुचि के अनुसार उनकी हर प्रकार की सेवा करना, दिन-रात सजग रहकर वीरासन से बैठे रहना, राम में मन लगायें राम नाम जपते हुए पहरा देना ही उनका कार्य है वे अपने कार्य में बड़े ही तत्पर हैं। ब्रह्मचर्य व्रत का पता तो इसी से लग जाता है कि माता-सीता की सेवा में सदा प्रस्तुत रहने पर भी उन्होंने उनके चरणों को छोड़कर अन्य किसी अङ्ग का कभी दर्शन तक नहीं किया। यह बात इसी से सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजी के गहनों को पहचान नहीं सके। जब रावण श्री सीताजी को आकाशमार्ग से ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़ पर बैठे हुए वानरों के दल में कुछ गहने डाल दिये थे। श्रीरामलक्ष्मण सीता को

खोजते हुए जब हनुमान जी की प्रेरणा से सुग्रीव के पास पहुँचे, तब सुग्रीव ने श्रीराम को वे गहने दिखलाये। श्रीराम के पूछने पर लक्ष्मण जी बोले—

नाहं जानामि केयूरे नाऽहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यपादाभिवन्दनात् ।।

(वा०रा०४।६।२२)

स्वामि! मैं इन केयूर और कुण्डलों को नहीं पहचानता। मैने तो प्रतिदिन चरणवन्दन के समय माताजी के नूपुर देखें हैं, अत: उन्हें ही मैं पहचान सकता हूँ। आज कल के देवरों को इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। श्रीलक्ष्मणजी के इस महान् व्रत पर श्रीराम को बड़ा भारी विश्वास था, इस बात का पता इसी से लगता है कि वे मर्यादा पुरुषोत्तम होने पर भी लक्ष्मण जी के साथ सीताजी को अकेले वेधड़क छोड़ देते थे। जब खरदूषण भगवान से युद्ध के लिए आये थे, तब श्रीराम ने जानकीजी को लक्ष्मण जी की संरक्षण में एकान्त गिरिगुहा में भेज दिया था-

राम बोलाई अनुज सन कहा।
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर।।

मायामृग को मारने के समय भी सीता के पास आप लक्ष्मणजी को छोड़ गए थे और निर्वासन के समय भी लक्ष्मणजी के साथ सीता को भेजा था।

लक्ष्मणजी का सेवा व्रत तपपूर्ण था। उन्होंने बारह साल तक लगातार श्रीराम की सेवा में रहकर कठिन तपस्या की, इसी कारण वे मेघनाद को मारकर राम-काज में सहायक बन सके थे। तपस्या में उनका उद्देश्य भी यही था, क्योंकि श्रीराम तत्त्व से भिन्न दूसरी बात न तो जानते थे और न वे जानना ही चाहते थे। उन्होंने स्वयं कहा है-

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू।
कहऊँ सुभाउ नाथ पतिआहु।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी।
दीन बंधु उर अंतरजामी।।
धरम नीति उपदेसिऊ ताहीं।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाहीं।।

●

नींबू के प्रयोग से लाभ

नींबू स्वास्थ्य व सौन्दर्य के लिए अति लाभदायक होता है। इसके कुछ लाभदायक नुस्खे निम्न प्रकार हैं—

मोटापा—एक गिलास गुनगुने पानी में एक नींबू निचोड़ लें, उसमें एक चम्मच शहद मिलकार हर रोज सुबह खाली पेट पिएँ, इससे शरीर की चर्बी घट जायेगी।

झाँइयाँ—नींबू व सन्तरे के छिलके का चूर्ण दहीं में मिला लें, इसमें बेसन व गुलाब-जल मिलाकर चेहरे पर उबटन की तरह लगायें। सूखने पर ठण्डे पानी से धो दें। ऐसा करने से चेहरे की झाँइयाँ व मुहासे दूर हो जाते हैं। ताजे नींबू के टुकड़ों पर थोड़ा-सा शहद मिलाकर रोजाना दो-तीन बार झाँइयों पर लगाने में झाँइयाँ दूर हो जाती हैं।

मुहासे—मुँहासे दूर करने के लिए आधा चम्मच हल्दी, आधा चम्मच कपूर, दो-तीन बूँद सरसों का तेल तथा आधा नींबू का रस मिलाकर फेंट लें। नहाने से पहले चेहरे पर लगाएँ। मुँहासे दूर होंगे, रंग भी निखर आयेगा।

जीवरूप वीज प्रदान भगवान करते हैं

संसार में किसी की भी सृष्टि होती है, उसमें जड़ चेतन का संयोग कारण है। उनका संयोग कराने वाले भगवान हैं। महत् रूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण प्रपञ्च का कारण है उसी महत् रूप मूल प्रकृति का उपनिषद् में ब्रह्म शब्द से वर्णन किया गया है। महत् रूप प्रकृति में भगवान जीवरूप बीजों का गर्भाधान करते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु आदि अपरा प्रकृति है और जीव पराप्रकृति है। भगवान के संकल्प से अपरा और पराप्रकृति का संयोग होता है। उससे समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है भगवान प्रकृति के साथ जीव का सम्बन्ध कर्मानुसार कराते हैं। यद्यपि पिता के वीर्य से सवों की उत्पत्ति होती है, फिर भी जीव का संयोग परमात्मा के द्वारा कराया जाता है। इसलिए सबों के जीव रूप बीज प्रदान करने वाले पिता भगवान ही हैं।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।

अत एव किसी को सन्तान उत्पत्ति में विलम्ब होने पर श्री हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों की कथायें सुनायी जाती हैं भगवान वेंकटेश आदि का दर्शन किया जाता है। उनसे भगवान प्रसन्न होकर जीव रूप बीज प्रदान करते हैं तब पुत्र उत्पन्न होता है। अगर माता-पिता के रज, वीर्य संयोग मात्र से सन्तान की उत्पत्ति होती तो वह संयोग बराबर ही होता है, फिर क्यों पुत्र उत्पन्न नहीं होता! धार्मिक अनुष्ठान से जब भगवान प्रसन्न होकर जीव रूप बीज प्रदान करते हैं तब पुत्र उत्पन्न होता है। इससे सिद्ध है कि भगवान के बीज प्रदान किये बिना जीव धारण नहीं करता है। ●

कल्याणकारी कुछ बातें

१. परमकल्याण किसमें है? — जो सर्वदा सनातन धर्म पर हृदय से आरुढ़ रहता है और सभी के साथ न्याय करता है।

२. परमशान्ति किसको है? — जिसके हृदय में क्षमा है।

३. परम तृप्ति किसमें है? — जो प्राचीन पुरुषों द्वारा निश्चित मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करता, जिसका अध्ययन बुद्धि के अनुसार है और जिसकी बुद्धि विद्या विरुद्ध नहीं है।

४. मोक्ष की जननी कौन है? — समर्थ की क्षमा और दरिद्र की दानशीलता यह दोनों मोक्ष की जननी है।

५. मनुष्य का परम बल क्या है?—क्षमा ! क्षमा अशक्तों के लिए गुण है, समर्थों के लिए आभूषण है।

६. धन का अपव्यय क्या है? — धन के दो अपव्यय हैं एक तो अपात्र को देना और दूसरे सुपात्र को न देना।

७. निन्दनीय क्या है? — पराये धन का हरण करना, पर स्त्री का सेवन करना और सम्बन्धियों का त्याग करना–ये तीनों लोभ, काम और क्रोध से होते हैं, अत एव यह तीनों ही निन्दनीय हैं।

८. तुरन्त फल देने वाली वस्तु क्या है?–चार बातें तुरन्त फल देने वाली है। १. देवताओं का ध्यान, २. बुद्धिमानों का संग, ३. विद्वान् का विनय और पाप का त्याग।

९. पूजनीय कौन है? — जो देवता, पितर, मनुष्य भिक्षुक और अतिथि पाँचों की नित्य पूजा करता है वह पूजनीय है। ●

अनन्य भक्ति से होता है गुणातीत

प्रकृति के तीन गुण हैं सत्व रज और तम। ये तीनों गुण जीवात्मा के बन्धन कारक होते है। वे क्रमशः प्रकाश, लोभ, और मोह रूप अपने-अपने कार्यों से बन्धन कारक बान्धते है। किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही प्रकाश है। सत्त्वगुण से लौकिक सुख और ज्ञान उत्पन्न होते हैं, उससे मानव को सुख और ज्ञान के प्रति आसक्ति होती है। उससे मनुष्य संसार के बन्धन में पड़ जाता है। इसलिए सत्त्वगुण सोना की बेड़ी है। सोना की बेड़ी से भी मानव को कष्ट होता ही है। सत्त्वगुण मानव को सांसारिक सुखों में फँसाकर भगवद् दर्शन रूप परमसुख से वञ्चित रखता है। रजोगुण होने के कारण तृष्णा और आसक्ति को उत्पन्न करने वाला होता है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन विषयों को प्राप्त करने की चाह को तृष्णा कहते हैं और मित्र, पुत्र आदि सम्बन्धियों में स्पृहा ही आसक्ति है। मानव स्पृहा और तृष्णावशात् पुण्य और पापमय सकाम कर्मों को करता है, उन कर्म फलों को भोगने के लिए विभिन्न योनियों में जन्म ग्रहण करता है, वस्तु के यथार्थबोध को ज्ञान कहते हैं। उससे भिन्न अज्ञान है। अज्ञान को ही मोह कहते हैं, तमोगुण से अज्ञान बढ़ता है, उससे प्राणी मोहित हो जाते हैं। तमोगुण प्रमाद आलस्य और निन्द्रा से जीवात्मा को बान्धता है। अकर्त्तव्य कर्म में प्रवृत करने वाली असावधानी प्रमाद है, कर्मों में प्रवृत न होने के स्वभाव को आलस्य कहते हैं। इन्द्रियों से कर्म करते-करते जब मनुष्य थक जाता है तब उसकी इन्द्रियाँ कर्मों से विरत हो जाती है। उसे ही निद्रा कहते हैं। उसमें बाहर की इन्द्रियों को कर्म से शान्त हो जाना स्वप्न है और मन को कर्म से शान्त हो जाना सुषुप्ति है।

सत्त्व, रज और तम— ये तीनों गुण मानव के लिए बन्धनकारक हैं। जो संसार के कष्टों से मुक्ति चाहते हैं, उन्हें गुणातीत होना चाहिये। मानव भगवान की अनन्योपासना (अविरल प्रेम) से गुणातीत होता है। जब भगवान के दिव्य चरणों में अनन्य प्रेम हो जाता है तब उस मनुष्य को जगत् की कोई भी वस्तु उसी प्रकार प्रिय नहीं लगती है जैसे कमल पुष्प-पराग पान करने वाला भौरा को कोई दूसरा पुष्प का रस प्रिय नहीं लगता है अत एव भगवान ने कहा है कि—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् जो मनुष्य सत्यसंकल्प, परमकारुणिक, आश्रित वत्सल मुझ परमेश्वर की ऐकान्तिक भक्तियोग के द्वारा उपासना करता है वह सत्त्वादि तीनों उपायों का अतिक्रमण करके ब्रह्म प्राप्ति के योग्य बन जाता है।

●

गो-घातक को मृत्यु-दण्ड का विधान

१. वेद में गोघातक के लिए मृत्यु-दण्ड बतलाया है। **'अन्तकाय गोघातकम्'** गोघात के लिए मृत्यु को प्रदान करने का अर्थात् मृत्युदण्ड का विधान है।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसौ अवीरहा।।
(अथर्व० १।१६।४)

इस मन्त्र में गोवध करनेवाले को सीसे की गोली से मारने का विधान है।

वास्तु-विचार

जगत् में सभी प्राणियों को घर की आवश्यकता होती है। मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि प्राणियों में कोई भी गृह के बिना नहीं रह सकता। गृहस्थ का समस्त सुख घर पर ही आधारित है; परन्तु स्वतन्त्र रहने वाले पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि के मकान में किसी प्रकार का विचार नहीं है; क्योंकि वे सब शास्त्रानधिकारी प्राणी हैं। जो वैदिक और स्मार्त कर्म करने के अधिकारी हैं उनके लिए घर सम्बन्धी विचार शास्त्रों में बताये गये हैं।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि गृहस्थ के सम्पूर्ण श्रौत-स्मार्त कर्म बिना गृह के सिद्ध होते ही नहीं।

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयन्ति गृहं विना।

गृहस्थ के सम्पूर्ण लौकिक या पारलौकिक कर्म सम्पादन का आधार घर ही होता है। अत एव ***'अथातः शालाकर्म' 'पुण्याहे शालां कारयेत्'*** आदि गोभिलगृह सूत्रों के द्वारा गृहनिर्माण पर विशेष प्रकाश डाला गया है।

मकान के लिए प्रथम जमीन पर विचार करना चाहिए, जिसमें मकान बनाना चाहते हैं वह जमीन मकान बनाने योग्य है या नहीं। जमीन का विचार बाहर और भीतर दोनों प्रकार से किया जाता है। मकान के अन्दर जमीन में केश, राख और हड्डी रहने पर मकान में रहने वालों की हानि होती है। केश और राख से कम हानि तथा हड्डी से विशेष हानि होती है। इसलिए मकान बनाने से पूर्व ज्योतिष शास्त्र के अनुसार केश, राख और हड्डी का विचार कर ले। अगर उनमें एक भी हो तो निकाल दे। इसी को शल्य विचार कहते हैं। शल्य का अर्थ होता है चुभने वाला। भूमि की परीक्षा रस, गन्ध और रंग से भी होती है। मधुर रस और गन्ध वाली पृथ्वी में वास करने वाला सुखी होता है। इसी तरह श्वेत वर्ण वाली, जिसमें कुश, काश उगे हों या अच्छी फसल होती हो वह भूमि मकान के लिए उत्तम होती है।

भूमि चार प्रकार की होती है–गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, दैत्यपृष्ठ और नागपृष्ठ। दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्य की ओर ऊँची भूमि को गजपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर मकार बनाकर रहने वालों को धन तथा आयु की वृद्धि होती है। बीच में और चारों ओर नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते हैं। इसमें वास करने वालों को उत्साह, सौख्य तथा धन-धान्य का लाभ होता है। पूर्व, अग्नि और ईशान कोण में उँची तथा पश्चिम दिशा में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि में वास करने वाला व्यक्ति धन, पुत्र तथा पशु आदि से रहित हो जाता है। पूर्व-पश्चिम की ओर लम्बी और उत्तर दक्षिण की ओर ऊँची भूमि को नागपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर वास करने वालों को उच्चाटन, मृत्यु, स्त्री आदि की हानि तथा शत्रुओं की वृद्धि होती है। अतः गजपृष्ठ और कूर्मपृष्ठ भूमि में ही मकान बनाना चाहिए। मकान में लम्बाई और चौड़ाई के अनुसार आयव्यय आदि होते हैं। उनका भी विचार कर लेना आवश्यक है। पूर्व-पश्चिम लम्बा मकान में विशेष हानि होती है। अतः वैसा मकान न बनावे। मकान और मकान-मालिक के साथ विवाह की तरह मेलापक का भी विचार कर ले।

मकान दक्षिण से बनाना प्रारम्भ करे। उत्तर या पूर्व का भाग पहले बन जाने पर दक्षिण और पश्चिम बनाने में विशेष कठिनाई होती है। मकान में दक्षिण भाग ऊँचा रहे उसके बाद क्रमशः पश्चिम, उत्तर और पूर्व भाग नीचा रहना चाहिए। मकान में उत्तर भाग ऊँचा और दक्षिण भाग नीचा तथा पूर्व ऊँचा और पश्चिम नीचा रहने पर विशेष हानि होती है। मकान में दक्षिण ओर घर नहीं रहने पर आर्थिक हानि और पश्चिम ओर घर न रहने पर पारिवारिक हानि होती है।

द्वार विचार—मकान में जिधर द्वार रखना हो उसे नौ बराबर भाग कर दे। घर से बाहर निकलने में जो दाहिने हो उधर पाँच भाग और बायें तीन

छोड़कर बीच के एक भाग में द्वार बनाना अच्छा होता है। वास्तुशास्त्र में घर से निकलते समय दाहिनी ओर अधिक रखने का विधान है।

घर में प्रवेश करते समय दाहिनी ओर अधिक रखे और वाँयीं ओर कम ऐसा कहने वालों का कथन शास्त्र विरुद्ध है। एतदर्थ निम्नलिखित प्रमाण देखना चाहिए —

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे।
त्रिभागमुत्तरे कार्यं शेषं द्वारं प्रकीर्तितम्।।
दक्षिणाङ्गः स वै प्रोक्तो मन्दिरान्निःसृते सति।
यो भूयाद् दक्षिणे भागे वामे भूयात्स वामगः।।

मकान से निकलने वाला द्वार कोना में न रखे। कोना का द्वार दुःख, शोक और भय देने वाला होता है। इसी तरह बीच में भी द्वार न बनावे। बीच में द्वार धन-धान्य का नाश, कलह और स्त्रियों में दोष उत्पन्न करता है।

एक से मिले हुए दो मकान न बनावे अर्थात् एक भित्ति पर अपना भी दो मकान नहीं होना चाहिए। वह मकान यमराज के समान होता है। उससे मालिक का विनाश होता है।

नाली विचार—घर से बाहर पानी निकलने के लिए बनाई गयी नाली आदि पूर्व दिशा की ओर हो तो शुभ, अग्निकोण (पूर्व-दक्षिण में नाली रहने से मृत्यु, दक्षिण में निर्धनता, नैर्ऋत्यकोण (दक्षिण-पश्चिम) में क्षय, पश्चिम में पुत्रनाश, वायव्यकोण (पश्चिम-उत्तर) में सुख, उत्तर में सम्पत्ति वृद्धि ईशानकोण (उत्तर-पूर्व) में नाली रखने से धन प्राप्ति होती है।

शुभं मृतिश्च निर्धनं क्षयं च पुत्रनाशनम्।
सुखं च राज्यसम्पदा धनं क्रमेण पूर्वतः।।

मकान में कुँआ, कल आदि बनाने का विचार—घर के मध्य में कूप-निर्माण धन के लिये हानिकारक होता है। ईशान (पूर्वोत्तरकोण) में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य वृद्धि, अग्नि (पूर्वदक्षिण) कोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्रीविनाश, नैर्ऋत्यकोण (दक्षिण-पश्चिम) घर के मालिक की मृत्यु, पश्चिम में शुभ, वायव्यकोण (पश्चिमोत्तर) में शत्रु से पीड़ा और वास्तु के उत्तर में कूप निर्माण गृहस्वामी के लिए शुभ होता है।

कूपे वास्तोर्मध्येदेशेऽर्थनाशस्त्वैशा-
न्यादौ पुष्टिरैश्वर्य वृद्धिः।
सूतोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च
सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्।।

अभिप्राय यह है कि मकान बनाते समय सावधानी पूर्वक ऊपर वर्णित विषयों पर ध्यान देते हुए ही निर्माण करना चाहिए।

●

मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।१।।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।२।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।३।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।४।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।५।।
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरावीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।६।।
गोपी मधुरा लीलामधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।७।।
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्।।८।।

●

सद्गृहस्थों को भी होता है मुक्ति

जगत् में चार आश्रमों का उल्लेख शास्त्रों में किया गया है। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम–इनमें कुछ सम्प्रदाय वालों ने यह निर्णय दिया है कि संन्यासियों को ही मोक्ष होता है; परन्तु अपने वैष्णव सम्प्रदाय में वैदिक प्रमाणों से संन्यासियों की भाँति गृहस्थ भी मोक्ष के पात्र होते हैं ऐसा माना गया है। भगवद्भक्ति करने वाले श्रीवैष्णव वह संन्यासी हो या गृहस्थ सब मुक्ति प्राप्त करते हैं, भगवद्भक्तों को मुक्ति में तब तक बिलम्ब है जब तक प्राकृत शरीर नहीं छूट जाता। प्राकृत शरीर छूटते ही गृहस्थ श्रीवैष्णव भी भगवान श्रीमन्नारायण का सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

'तस्य तावदेव चिरं यावत् न विमोक्षे अथ सम्पत्स्ये'–इस उपनिषद् मन्त्र से मुक्ति में संन्यासी या गृहस्थ का उल्लेख नहीं किया गया है। जिनमें भगवद्दर्शन की उत्कट इच्छा होती है वे मुक्ति प्राप्त करते हैं। कठोपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र में भी यही भाव प्रकट होता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः
तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।। (कठोपनिषद्)

भगवान् न उनको मिलते हैं, जो शास्त्रों को पढ़-सुनकर लच्छेदार भाषा में परमात्म-तत्त्व का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, न उन तर्कशील बुद्धिमान मनुष्यों को ही मिलते हैं। जो बुद्धि के अभिमान में प्रमत्त हुए तर्क के द्वारा उन्हें समझने की चेष्टा करते हैं, जो परमात्मा के सम्बन्ध में बहुत सुनते रहते हैं, उन्हें भी भगवान नहीं मिलते हैं। परमात्मा उसी को प्राप्त होते हैं जिसको उनके लिए उत्कट इच्छा होती है जो उनके विना रह नहीं सकते। जो अपनी बुद्धि या साधन पर भरोसा न करके केवल उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है, ऐसे कृपा निर्भर साधक पर परमात्मा कृपा करते हैं और योगमाया का परदा हटाकर उसके सामने अपना स्वरूप प्रकट कर देते हैं।

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी महाराज श्रीवैष्णव धर्म प्रचार के लिए ७४ पीठों की स्थापना किये थे। उसी काम के लिए श्रीवरवरमुनि स्वामी ने अष्टगद्दी की स्थापना की थी। उनमें गादिपतियों के रूप में तीन संन्यासी और पाञ्च गृहस्थ आचार्य हुए थे। जिन्हें संसार के भोग से वैराग्य और भगवान् के चरणकमल में अनुराग होता है उनका गृह ही तपोवन हो जाता है।

निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।

विना वैराग्य के केवल संन्यासी का वेष धारण करके अरण्य में वास करने से कोई लाभ नहीं है। वैराग्ययुक्त गृहस्थ के लिए अपना घर ही तपोवन के समान है।

कालिदास ने अपने विरचित रघुवंश महाकाव्य में रघु-कौत्स संवाद में गृहस्थाश्रम को 'सर्वोपकारक्षम्' कहा है। अर्थात् गृहस्थ ही ब्रह्मचारी संन्यासी आदियों की सेवा करता है। दूसरे आश्रम वाले गृहस्थ की मदद से अपने अपने धर्म का यथोचित अनुष्ठान करते हैं। अतः गृहस्थ आश्रम सबका उपकार करने वाला है।

मनुस्मृति में कहा गया है कि जैसे समस्त प्राणी माता के आश्रय से जीवित रहते हैं वैसे ही दूसरे सभी आश्रम वाले गृहस्थ के आश्रित होते हैं। अतः सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ माना गया है। गृहस्थाश्रम के आचार्य भी उपदेश द्वारा मोक्ष के पात्र बनाते हैं। स्वयं भी मुक्त होते हैं। अतः संन्यासियों की ही मुक्ति होती है यह कथन गलत है।

हरिद्वार महाकुम्भ का आँखों देखा वर्णन

हरिद्वार कुम्भ महापर्व २०१० का प्रारम्भ तो भूमि आवंटन के साथ नवम्बर २००९ से ही हो गया था; परन्तु महापर्व के उपलक्ष्य में होने वाले कार्यक्रमों का प्रारम्भ २६ फरवरी से हुआ। फरवरी मास में ही पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजार्य जी महाराज स्थानाधीश सरौती, हुलासगंज मेहन्दिया, जमुआइन (बिहार) तथा काशी (उ०प्र०) द्वारा श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य वैष्णव सेवाश्रम (बाड़ा) द्वारा सञ्चालित होने वाले कार्यक्रमों की घोषणा कर दी गयी। एतदर्थ हरिद्वार की पहली यात्रा २६ फरवरी को छोटे स्वामी जी महाराज (स्वामी हरेरामाचार्य जी महाराज) तथा कुछ अन्य भक्तों के साथ स्वामी जी महाराज की हुयी और हरिद्वार में भूमि निरीक्षण कर यज्ञशाला, प्रवचन पण्डाल, चौका, मन्दिर, पेयजल, शौचालय आदि के निर्माण हेतु निर्देश उनके द्वारा दिया गया। हरिद्वार-कुम्भ में भूमि की कमी राजनीतिक, भौगौलिक कारणों से सदैव से रहा करती है। कुछ ऐतिहासिक कारणों से भी भूमि आवंटन में विषमता रहती है, कारण यह है कि प्रशासन के पास कागजी दस्तावेज के अतिरिक्त व्यवहारिक ज्ञान का सर्वथा अभाव रहता है। हुलासगंज द्वारा सञ्चालित बाड़ा सप्त सरोवर चौक के पास आचार्य बेला सेक्टर २४ प्लाट नम्बर ३६ में आवंटित हुआ। आचार्य बेला में विभिन्न सम्प्रदायों के ५० के करीब बाड़ा लगे थे, जिनमें कुछ सन्तों के पास इतनी अधिक भूमि थी कि भक्तों के अभाव में विरान-सा लगता था, कुछ ने भूमि आवंटित करवाकर प्रतीकात्मक रूप से बाड़ा (कैम्प) लगाये। आदि।।

हमें भी भूमि का आवंटन हमारे कार्यक्रमों के अनुसार अत्यल्प हुआ, जिससे भक्तों को कुछ कष्ट उठाना पड़ा। २६ मार्च को स्वामी जी महाराज ने ट्रक द्वारा अन्नादि प्रेषित कर स्वयं छोटे स्वामी जी महाराज तथा अन्य भक्तों के साथ हरिद्वार के लिए प्रस्थित हो गए। फिर क्या था, भक्तों का आगमन प्रारम्भ हो गया। यद्यपि २६ फरवरी को स्वामी जी महाराज द्वारा हनुमत् ध्वजारोपन के बाद से ही बाड़ा सञ्चालित होने लगा था, तथापि भक्तों की संख्या उतनी नहीं थी, फिर भी २५-३० भक्त श्रीलक्ष्मी स्वामी के नेतृत्व में बाड़ा में नियमित रूप से रहने लगे थे। बाड़ा की व्यवस्था को व्यवस्थित करने का दायित्व स्वामी जी महाराज ने श्रीलक्ष्मी स्वामी को दे दिया था। हरिद्वार में स्वामी जी की उपस्थिति सोने में सुगन्ध स्वरूप सिद्ध होने लगी। भक्तों का आना गङ्गा की अविरल धारा की भाँति सिद्ध होने लगा। शाम में भक्तों की संख्या २०० देखी गयी, तो प्रात: ३००,पुन: शाम को ३०० तो पुन: शाम को ५००। इसी क्रम से श्रद्धालु वैष्णव जन आते गये और यह संख्या ५ अप्रिल के पूर्व सन्ध्या तक पाँच हजार से ऊपर हो गयी।

भक्तों के आवास हेतु जितनी भूमि थी सबों को टेन्ट आदि से आच्छादित कर दिया गया था, फिर भी स्थानाभाव के कारण परेशानी हो रही थी। अत: अन्य आश्रमों हेतु आवंटित १५-१६ हजार वर्गफूट रिक्त भूमि को अधिगृहीत कर उसमें टेन्ट आदि लगाया गया। कुल मिलाकर ३५-३६ हजार वर्ग फूट भूमि में टेन्ट आदि की व्यवस्था की गई थी किन्तु जलसंख्या के समक्ष वह व्यवस्था भी बौना सिद्ध होने लगा। तब स्वामी जी महाराज ने एक तीन मञ्जिला भवन किराये पर भक्तों के आवास हेतु खरीद लिया। फिर भी आवास की कमी अनुभव की गयी। आवास के साथ भक्तों की सुविधा हेतु दो दर्जन शौचालय, यथेष्ठ पेयजल हेतु नल आदि की व्यवस्था स्वामी जी महाराज के निर्देशानुसार मुख्य कार्यक्रम अर्थात् ५ अप्रैल के पूर्व व्यवस्थित कर लिया गया।

यज्ञों में विगत कई वर्षों से पाकशाला का काम अयोध्या के पाक विशेषज्ञ पण्डितों द्वारा स्वामी जी महाराज द्वारा लिया जाना अत्यन्त उपयोगि सिद्ध हो रहा है। हरिद्वार में भी अयोध्या से पाक विशेषज्ञों को स्वामी जी महाराज ने आहूत कर लिया था, जिसके कारण अपार भीड़ को दोनों शाम समय से भोजन

की सुविधा मिलती रही। हरिद्वार महाकुम्भ का यह एक अभूतपूर्व उदाहरण था। किसी भी बाड़ा में न तो इतनी भीड़ थी और न ही दोनों शाम बालभोग (जलपान) के साथ भोजन की ही व्यवस्था थी। असुविधा कुछ थी तो केवल आगन्तुक भक्तों के सापेक्ष भूमि आवंटित नहीं होने के कारण आवास की। जिसकी पूर्ति स्वामी जी महाराज के प्रवचन से होती थी।

प्रात: आठ बजे से ही स्वामी जी के अमृतमय वाणी श्रवण करने हेतु भक्तगण पण्डाल में उपस्थित हो जाते थे। स्थानाभाव के कारण पण्डाल के बाहर रोड पर भी घण्टों खड़े होकर आश्रम के भक्तगण तथा बाहर से आये हुए कथा प्रेमी कथा-श्रवण करते हुए प्रसन्न चित्त देखे जाते थे। इससे आवासीय समस्या मानसिक रूप से कुछ कम हो जाती थी।

धार्मिक अनुष्ठान—५ अप्रिल से १६ अप्रिल तक हरिवंश महापुराण एवं वाल्मीकि रामायण की कथा।

सन्तान प्राप्ति की लालसा लिए बारह दम्पतियों ने श्रद्धा के साथ हरिवंश महापुराण का श्रवण किया। स्वामी जी महाराज द्वारा यह कार्यक्रम अनवरत चलायी जा रही है, जिसका लाभ भक्तों को स्पष्ट रूप से प्रभावित कर रहा है । इसी कारण से बिहार से इतनी दूरी पर भी आयोजित इस कार्यक्रम में बारह दम्पतियों ने भाग लिया। यद्यपि स्वामी जी का प्रवचन २६ अप्रेल से ही प्रात: ८ से १० तथा सायं ५ से ८ बजे तक प्रारम्भ हो गया था। वे प्रात: ८ से १० बजे गीता पर तथा सायंकाल वाल्मीकि रामायण पर प्रवचन करते थे। किन्तु ५ अप्रेल से १३ अप्रेल तक हरिवंश महापुराण का और वाल्मीकि रामायण का विशेष रूप से प्रवचन होता था।

१४ अप्रेल को मुख्य स्नाना था।

१५-१९ अप्रेल तक पूर्व सङ्कलित श्रीलक्ष्मी-नारायण महायज्ञ आयोजित था। यज्ञ मण्डप का दायित्व पूज्यपाद छोटे स्वामी जी महाराज ने सम्भाल लिया। इस अवधि में छोटे स्वामी जी महाराज के ऊपर दोहरा भार आ गया। दिनभर मण्डप में तीन यजमानों तथा अन्यान्य पण्डितों के साथ अग्निदेव के सान्निध्य में यज्ञ का सञ्चालन करना तथा शाम को प्रवचन करना। एक मास तक दोनों आचार्यों का सान्निध्य लाभ भक्तों के लिए हरिद्वार की विशेष उपलब्धि मानी जायेगी।

अखण्ड नाम सङ्कीर्तन—अन्त में २४ घण्टे का भगवत् रिझावन अखण्ड का आयोजन हुआ, जिसमें महिला भक्तों की भूमिका सराहनीय रही।

नित्य कार्यक्रम :

प्रात: ७ बजे भगवान की पूजा, सामूहिक स्तुति तदुपरान्त बालभोग वितरण।

प्रवचन—प्रात: से ८-१० एवं सायं ५-८ बजे तक।

भोजन—दिन में १२ बजे से तथा रात्रि में ९:३० बजे से।

सांस्कृतिक कार्यक्रम—रात्रि ८-९:३० तक।

भण्डारा—विभिन्न क्षेत्र के भक्तों ने भण्डारा का आयोजन किया, जिसमें विरन्ज आदि की व्यवस्था हुयी और यज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर आश्रम की ओर से बून्याँ-पूरी का दिव्य भण्डारा हुआ।

दीक्षा-ग्रहण—बहुत से भक्तों ने महाकुम्भ योग का विशेष लाभ उठाते हुए हरिद्वार जैसे क्षेत्र में भगवान की शरणागति रूप वैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को सफल बनाने का सङ्कल्प लिया।

वातावरण—हरिद्वार का वातावरण ठंढ एवं गर्मी से युक्त था। दिन में गर्मी तथा रात्रि में ठंढ।

दुर्घटना—१९ अप्रेल को प्रात: ७-८ पड़ोस के बाड़ा में आग लग गयी, तेज पछुवा हवा के कारण हमारे आश्रम को भी अग्निदेव ने अपने चपेट में ले लिया। सम्भवत: पड़ोस के बाड़ा से उनकी क्षुधा तृप्त नहीं हुयी थी। अत: हमारे यहाँ भी आकर लाखों का चूना लगा गये। इस दुर्घटना में टेन्ट, शामियाना आदि सामानों के साथ पुस्तकों का जलना विशेष कष्टकारक रहा। पूज्यपाद स्वामी जी महाराज को दुर्लभ पुस्तकों के जलने से विशेष कष्ट हुआ; परन्तु अग्निदेव की विशेष कृपा यह रही कि उन्होंने भक्तों एवं ठाकुर जी को छोड़ दिया। मात्र टेन्ट, शामियाना, वस्त्र, कम्बल, द्रव्य आदि को जलाकर ही सन्तुष्ट हो गए। अत: उन्हें शत्-शत् नमन। ●

केन्द्र एवं राज्य सरकारों के लिए करणीय कार्य

गंगा की अविरलता और निर्मलता हेतु—

१. सन्तों का स्पष्ट मत है कि विकास हम भी चाहते हैं किन्तु ऐसा विकास चाहते हैं जिसमें हमारे भारत राष्ट्र के आध्यात्मिक स्वरूप, समाज की श्रद्धा और हमारी सांस्कृतिक धरोहरों का संरक्षण-संवर्धन सुनिश्चित हो और जिसका फायदा सभी को मिले। सांस्कृतिक धरोहर के विनाश की आधार-शिला पर रखा गया विकास हमें नहीं चाहिए।

२. गङ्गा पर निर्माणाधीन एवं प्रस्तावित सभी जल-विद्युत परियोजनाएँ तत्काल प्रभाव से निरस्त की जाए।

३. टिहरी बाँध में अवरुद्ध गङ्गा की अविरलता को अबाधित कर पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के साथ ब्रिटिश सरकार द्वारा किये हुए समझौते का पालन किया जाए।

४. नरौरा बाँध से ३००० क्यूसेक जल गङ्गा में प्रवाहित होने की व्यवस्था सुनिश्चित की जाए।

५. गङ्गा की निर्मलता के लिए गङ्गा तट के प्रान्तों में गङ्गा बेसिन रक्षा प्राधिकरण बनाया जा रहा है। इसमें सन्तों, सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं सम्बन्धित नगरपालिकाओं और ग्राम समाज के लोगों को सम्मिलित कर उनके कर्त्तव्यों का निर्धारण किया जाए।

६. गङ्गा के किनारे बसे सभी शहरों और कस्बों का मल-मूत्र व प्रदूषित पानी गङ्गा में न डाला जाए। उसका उपयोग कृषि-कार्य हेतु सुनिश्चित किया जाए। औद्योगिक इकाईयों को गङ्गा से पर्याप्त दूरी पर रखा जाए और उसका प्रदूषित जल गङ्गा में प्रवाहित नहीं हो।

७. ऊर्जा उत्पादन के वैकल्पिक स्रोत यथा- (सौर, पवन, परमाणु ताप, गैस आदि पर सम्भावनाएँ तलास कर कार्य प्रारम्भ किया जाए।

८. जिस प्रकार वर्तमान माननीय प्रधानमन्त्री जी ने त्वरित आर्थिक विकास के लिए वित्तमन्त्री रहते हुये समाजवाद के नाम पर चली आ रही सोच में मौलिक परिवर्तन किया। ठीक इसी प्रकार गङ्गा की अविरलता और निर्मलता सुनिश्चित करने के लिए माननीय प्रधानमन्त्री जी एवं मुख्यमन्त्री जी अपनी सोच में मौलिक परिवर्तन करें।

९. गङ्गा को राष्ट्रिय नदी नहीं राष्ट्रिय धरोहर घोषित किया जाए।

श्रीरामजन्मभूमि के सम्बन्ध में सन्त समाज का स्पष्ट मत—

१. सन्तों के नेतृत्व में चलने वाला रामजन्मभूमि मन्दिर निर्माण का यह सात्त्विक आन्दोलन करोड़ो हिन्दुओं की आस्था का विषय है। हमारा आग्रह है कि इसे कोई भी वोट का विषय न बनावें।

२. सन्त समाज समस्त राजनीतिक दलों को यह भी निवेदन करना चाहता है कि यह विषय राष्ट्रिय महत्व का होने के कारण इस पर सभी राजनीतिक दल राजनीति से ऊपर उठकर इसका समर्थन करें तथा एकमत से संसद में कानून बनाकर श्रीराम जन्मभूमि हिन्दू समाज को सौंप दें।

३. श्रीराम जन्मभूमि भगवान् का प्राकट्य स्थल है। इसके निर्माण के लिए संसद में कानून बनने से ही हिन्दुओं के ऊपर सतत होने वाले

अपमान का परिमार्जन होगा। यही अपमान उसे भगवान् का प्राकट्य स्थल होने से मथुरा और काशी में भी सताता है।

४. सन्तों का स्पष्ट मत है कि वह स्थल श्रीराम जन्मभूमि है। जहाँ श्रीरामलला आज भी विराजमान हैं और उनकी निरन्तर पूजा हो रही है। इसी स्थान पर भव्य दिव्य मन्दिर का निर्माण होगा।

५. श्रीराम जन्मभूमि हिन्दू समाज के लिए सम्पत्ति नहीं है। समाज की मान्यता है कि रामलला के समान जन्मभूमि भी देवता हैं और इस रूप में पूज्य है।

६. मन्दिर को जिस प्रारूप के लिए करोड़ों हिन्दूओं ने सवा-सवा रुपया अर्पित किया, करोड़ों घरों में जिसके चित्र लगे हैं, उसी प्रारूप का श्रीराम जन्मभूमि पर मन्दिर बनेगा।

७. श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर के लिये जिन पत्थरों की नक्काशी की गई है और वे अयोध्या कार्यशाला में सुरक्षित हैं, नित्य हजारों लोग जिनके दर्शन करते हैं, उन्हीं पत्थरों से श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर का निर्माण होगा।

८. सन्त समाज का कथन है कि अयोध्या की सांस्कृतिक सीमा में किसी मस्जिद का निर्माण नहीं होने देंगे और विदेशी बर्बर आक्रान्ता बाबर के नाम से सारे हिन्दूस्थान में कोई मस्जिद नहीं बनेगी।

गोवंश रक्षण-संवर्धन के लिए सरकार द्वारा करणीय कार्य—

१. गाय को राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर घोषित किया जाए।

२. भारतीय नस्ल की गायों के संरक्षण व संवर्धन हेतु एक अलग से गो-संवर्धन मन्त्रालय, गो-सेवा आयोग स्थापित किया जाए।

३. गोवंश के विकास के लिए भारतीय नस्ल के साँड़ों एवं बैलों की उपयोगिता सुनिश्चित करते हुए इनका भी संरक्षण एवं संवर्धन किया जाए।

४. बैल-आधारित कृषि और उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय।

५. गौ-माता के कृत्रिम गर्भाधान को बन्द करना।

६. गोवंश हत्या बन्दी का कठोर कानून बनाकर उसके प्रभारी क्रियान्वयन की व्यवस्था की जाए। गो-मांस निर्यात को बन्द करते हुए समस्त कत्लखानों को प्रतिबन्धित किया जाए।

७. गायों के चरने के लिए गोचर भूमि सुरक्षित रहे, अतिक्रमित गोचर भूमि मुक्त कराकर गोचर 'प्राधिकरण' का निर्माण किया जाए।

८. भारत के अन्नदाता किसानों को आत्महत्या का मार्ग छोड़कर आत्मसम्मान से जीने वाला जीवन बने। इसके लिए रासायनिक खाद कीटनाशकों को प्रतिबन्धित करते हुए गोवंश आधारित जैविक कृषि ग्राम एवं कृषि आधारित ग्रामोद्योग केन्द्र स्थापित करना।

९. जेलों में गोशालाओं का निर्माण हो।

१०. गो आधारित कृषिनीति, आर्थिक नीति, गोग्राम आधारित उद्योगनीति, शिक्षा में गोग्राम, जीवकनीति, गो आधारित स्वास्थ्यनीति अपने राज्यों में लागू किया जाय। सम्पूर्ण समाज को सङ्गठित होकर पूरी शक्ति लगाकर उपरोक्त तीनों कार्यों को सम्पन्न करना होगा यह युग का आह्वान है।

गङ्गा की दुर्दशा

आज हमारी दृष्टि बदल गई है। गङ्गा माँ, गङ्गा न होकर हमारे लिए नदी मात्र रह गई है। बन गई हैं भोग्या और ऐसी भोग्या की सभी सीमाएँ लोहा हम उसका भोग्य करते चले जाएँ। सिंचाई के नाम पर हमने गङ्गा से नहरे निकालीं और अब बिजली प्राप्त करने के बहाने बाँध पर बाँध बनाने में जुट गए। गङ्गा का प्राण, हिमन्दी से आने वाला गङ्गाजल ही हमने रोक दिया। नाममात्र को जल चलने दिया। वर्षा के जल और छोटी-छोटी बरसाती निदयों के जल के कारण ही गङ्गा का प्रवाह आगे बढ़ा। गङ्गा नदी न रहकर, साधारण नाले-सी बहने वाली धार बन गई।

हरिद्वार के आगे बढ़ने पर गङ्गा के प्रवाह में प्रदूषण की वृद्धि होती जाती है। प्रदूषण मिटाने की सामर्थ्य घटती जाती है। जल का तापमान, क्षारीय गुण, कठोरता, क्लोराइड एवं बी०ओ०डी० की मात्रा में क्रमशः बढ़ोतरी होती जाती है। हजारों शवों का प्रतिदिन गङ्गा के किनारे संस्कार किया जाता है। अनेक शव ऐसे ही गङ्गा में बहा दिए जाते हैं। शहरों का गन्दा पानी, उद्योगों का कचरा गङ्गा में प्रवाहित कर देना सबसे सस्ता और आसान मार्ग खोज लिया है।

कई बार ऐसा लगता है कि हम ही गङ्गा को समाप्त करने में लगे हैं। हम गङ्गा के तट पर मलमूत्र, कफ, थूक, दन्त धावन आदि करते हैं। करोड़ों लोगों की अस्था का केन्द्र गङ्गा का अस्तित्व आज विहित स्वार्थ, नासमझी और अदूरदर्शिता के कारण खतरे में पड़ गया है। यदि ऐसा ही चलता रहा तो आने वाली पीढ़ियाँ माँ गङ्गा के दर्शन व स्पर्श से भी वञ्चित हो जायेगी और इस विनाश के लिए वे हमें कभी माफ नहीं करेंगी।

हरिद्वार से आगे बढ़, गङ्गा फर्रूखाबाद आती है। यहाँ तक इसमें कोई दूसरी नदी नहीं मिलती। कन्नौज में राम गङ्गा और काली निदयाँ आकर मिल जाती है। प्रयाग में यमुना आकर मिलती है। गाजीपुर के निकट गोमती और छपता के निकट घाघरा आकर मिल जाती है। कुछ और आगे बढ़ने पर, कोशी और गण्डक भी आकर मिल जाती है।

हरिद्वार से लेकर प्रयाग तक का प्रवाह मैदानी क्षेत्र का प्रवाह है। इस पूरे क्षेत्र में पहले कोई भी नगर गङ्गा में प्रदूषण नहीं फेंकता था। जब कानपुर का विकास आद्योगिक नगर के रूप में हो गया तो वह सर्वाधिक प्रदूषण गङ्गा में उड़ेलने लगा। सन् १९९० के पश्चात् गजरौला (उ०प्र०) अपनी आर्गेनिक कैमिकल्स लि० फैक्टरी का कचरा और गन्दा पानी गङ्गा में उड़ेलता है।

जिस तरह से माँ भागीरथी व अलकनन्दा और उसकी सहायक नदियों पर एक के बाद एक जल विद्युत परियोजनाएँ तैयार की गई है, यदि वे चलती रहती तो यही कहा जाएगा की देश की बागडोर सम्भालने वालों को अपनी संस्कृति से काई प्रेम नहीं, अपनी पीढ़ियों से कोई प्रेम नहीं, उन्हें तो केवल पैसा चाहिए, बिजली प्राप्त करना या विकास तो मात्र एक बहाना है। ये परियोजनाएँ हिमालयवासियों को खेती और प्राकृतिक संसाधनों से विहीन कर देंगी और भावी पीढ़ियों और अधिक गरीब हो जाएँगी। आज के युवकों को रोजगार प्रदान करने का वायदा, यह भ्रामक और अस्थायी है।

गङ्गा हमारी आराध्या है, उपास्या है। इसे नष्ट करने का कोई भी प्रयास इसके भक्तों के अधिकारों का हनन है। भारत के प्रति अत्याचार भी है। कहाँ है ऐसा जल, जो स्वयं तो शुद्ध और सर्वगुण सम्पन्न है ही, अपने से मिलने वाले अशुद्ध जल को भी अपने समान शुद्ध और गुणसम्पन्न बना देती है। गङ्गा में जो मिला वह गङ्गा ही बन जाता है। मशीनों द्वारा वैज्ञानिक तरीके से पीने के लिए

बनाया गया मिनरल वाटर कुछ महीनों तक ही पीने योग्य रहता है, बाद में दूषित माना जाता है। यह मिनरल वाटर दूसरे जल को शुद्ध नहीं कर सकता।

उत्तराखण्ड के धाम सङ्कट में—देश की चारों दिशाओं में चार धाम की मान्यता प्राचीन काल से चली आ रही है। इनमें से उत्तर दिशा में बदरीनाथ धाम प्रधान रूप से स्थित है। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड राज्य में भगवत् प्रदत्त और तीन धाम– गङ्गोत्री, यमुनोत्री तथा केदारनाथ माने जाते हैं।

गङ्गा, यमुना और उनकी सहायक निदयों के कारण ही उत्तराखण्ड में इन चारों धामों का महत्व है। गङ्गा, यमुना के अस्तित्व पर सङ्कट आएगा तो निश्चित रूप से इन देव स्थानों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा।

उत्तराखण्ड के प्रयाग सङ्कट में—भागीरथी व अलकनन्दा के सङ्गम तट पर स्थित गणेश-प्रयाग तो पहले ही टिहरी बाँध जल विद्युत परियोजना में सदा-सर्वदा के लिए डूब गया है। इसी प्रकार अलकनन्दा पर स्थित पञ्च प्रयोगों को भी समाप्त करने की योजना पर काम चल रहा है। विष्णु-प्रयाग (अलकन्दा, धोली गङ्गा), नन्द प्रयोग (नन्दाकिनी-अलकनन्दा), कर्णप्रयाग (पिंडर अलक-नन्दा), रुद्र प्रयाग (मन्दाकिनी अलकनन्दा), देव प्रयाग (भागीरथी-अलकनन्दा) पर भावी जल विद्युत परियोजनाओं में या तो डूब रहें हैं या फिर सूख रहे हैं।

भागीरथी व अन्य नदियों पर बन रही बाँधों की शृङ्खला के कारण नदियों का प्राकृतिक स्वरूप ही लुप्त हो जाएगा। गङ्गोत्री से हरिद्वार तक कहीं भी गङ्गा अब अपने मूल स्वरूप में बहती हुई नहीं दिखेगी। या तो इसे बड़े बाँधों में बाँध दिया जाएगा या फिर सुरङ्ग के भीतर से भूमिगत प्रवाह सम्भव होगा।

****

गङ्गा : एक राष्ट्रिय अस्मिता

हमारी आस्था के साथ खिलवाड़—गङ्गा नदी कोई सामान्य नदी नहीं, न गङ्गाजल सामान्य जल है। इनके साथ सामान्य नदी या जल जैसा वैज्ञानिक अथवा तकनीकी व्यवहार, आर्थिक विकास या आधुनिकता के नाम पर छेड़छाड़ कदापि स्वीकार नहीं। गङ्गा भारतीय संस्कृति में 'माता' के रूप में और गङ्गाजल 'मुक्तिदाता' के रूप में हमारी आस्था है। आस्था का स्थान बौद्धिक, वैज्ञानिक तर्कों और आर्थिक हितों के कहीं ऊपर होता हैं। गङ्गा के जल में हल्कापन है, गति शान्त है, प्रवाह सहज है, जल कभी खराब नहीं होता, न गन्ध आती है, न रङ्ग बदलता है, न कीड़े पड़ते हैं।

गङ्गा की पवित्रता का रहस्य—गङ्गा के इस सहज और सतत् प्रवाह का कारण है हिमालय की ऊँची चोटियाँ, जहाँ तक पहुँचते-पहुँचते बादल, अपना समग्र मल और गन्ध खो बैठते हैं और अति स्वच्छ तथा गन्धहीन होकर हल्के से हल्के रूप में, हिमालय की ऊँची चोटियों पर जमते चले जाते हैं। बर्फ गिरती है, जमती हैं। हिमालय की चोटियाँ चट्टानों से बनी हैं। जिन पर रगड़ खा-खाकर हिम इन चट्टानों के वैशिष्ट्य को अपने में समेट लेता है। ऊँचाई से हिमनद बन, नीचे बहता है, आस-पास की पहाड़ियों, पेड़-पौधे व वनस्पतियों से खनिजों को, लवणों को, औषधिय गुणों को, उनके प्रभावों को ग्रहण करता है। घर्षण से और भी गुण बटोरता है और वह सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, जो अशुद्धता को रहने ही नहीं देती।

कैसे बनती है गङ्गा?—भागीरथी और अलक-नन्दा का सम्मिलित नाम गङ्गा है। गङ्गा नदी का मुख्य स्रोत गङ्गोत्री है। जहाँ यह भागीरथी के नाम से जानी जाती है। हिमालय से जाह्नवी नदी निकल कर भागीरथी से गङ्गोत्री के निकट मिलती है। भागीरथी का मुख्य सहायक नदी भिलगंना है जो टिहरी बाँध में भागीरथी से मिल जाती है।

अलकनन्दा बदरीनाथ के ऊपर से निकलती है। जिसमें धौलागिर पर्वत श्रेणियों में स्थित ग्लेशियरों से उद्गमित धौली-गङ्गा विष्णु-प्रयाग में आकर अलकनन्दा से मिलती है। आगे चलकर पतलगङ्गा, गरूड़गङ्गा इसमें मिलती है। नन्द-प्रयाग में त्रिशूल पर्वत से निकलने वाली मन्दाकिनी अलकनन्दा में समाहित होती है। पिण्डारी ग्लेशियर से आने वाली पिण्डर कर्ण-प्रयाग में आकर अलकनन्दा में समाहित होती है। रुद्र प्रयाग में मन्दाकिनी भी अलकनन्दा में आकर मिल जाती है।

अलकनन्दा और भागीरथी का सङ्गम देवप्रयाग में होता है। उसके आगे यह पुण्य प्रवाह गङ्गा के नाम से ऋषिकेश और हरिद्वार होता हुआ बंगाल की खाड़ी तक जाता है। अपने उद्गम स्थल गौमुख से लेकर बंगाल की खाड़ी तक गङ्गा २५२५ किलोमीटर की यात्रा तय कर गङ्गासागर में अपना अस्तित्व विलीन कर देती है। इस मार्ग में यह प्रवाह लगभग १०० छोटे-बड़े नगरों, महानगरों को अपना सान्निध्य प्रदान करता है। गङ्गा के तट पर लगने वाले मेले इसके स्वरूप को और भी अधिक रमणीय बना देते हैं।

हरिद्वार तक का गङ्गा का प्रवाह, शिखरों की ऊँचाई की धवलता, बर्फ की निर्मलता, चट्टानों की रगड़ की उष्मा, चट्टानों में निहित विभिन्न खनिज तत्त्व जैसे–लौह, ताँबा, चाँदी, मैग्नीशियम, कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम, जिंक, कोबाल्ट आदि के साथ गन्धक और पहाड़ियों पर पटी पड़ी औषधियों की गुणवत्ता अपने में समेटता है। पर्वतीय प्रवाह और कङ्कडों का जमावड़ा धारा के साथ-साथ और जल से खिलवाड़ करता पत्थरों तथा कङ्कड़ों का बहाव जल को कहीं गन्दा नहीं होने देता। यह जल त्वचा के लिए, पेट के लिए, स्फूर्ति के लिए, अस्थियों के लिए, मन और मस्तिष्क के लिए, हृदय और आत्मा के लिए अति लाभप्रद है। यह जल नहीं, अमृत है। स्वयं के शुद्धिकरण की यह प्रक्रिया गङ्गा-प्रवाह में सतत् चलती रहती है। यदि मनुष्य के हाथ इस प्रवाह में हस्तक्षेप न करें तो गङ्गा में आत्मशुद्धि का गुण सदैव बना रहेगा।

****

श्रीहनुमत् शक्ति जागरण से ही शीघ्र राम-मन्दिर निर्माण

हरिद्वार कुम्भ के पावन अवसर पर ५ अप्रैल को केन्द्रीय मार्गदर्शक मण्डल की बैठेक कनखल के विश्वकल्याण साधनायतन श्रीमन्त्र मन्दिर परिसर में दीप प्रज्वलन से प्रारम्भ हुई, बैठक में उपस्थित सन्तों ने गो-गङ्गा व राममन्दिर को ही चर्चा के केन्द्र में रखा। सन्तों ने कहा कि मन्दिर निर्माण के लिए पूरे देश में जागरण अभियान चलाया जायेगा, जिसका नेतृत्व स्वयं सन्त करेंगे। जनजागरण के लिए तुलसी जयन्ती १६ अगस्त से अक्षय नवमी १५ नवम्बर तक ग्राम-ग्राम, मोहल्ले-मोहल्ले में मन्दिर केन्द्रित हनुमत् शक्ति जागरण के धार्मिक अनुष्ठान किये जाएगें। १७ दिसम्बर तक देशभर के प्रत्येक विकास खण्ड, प्रखण्ड व तहसील में हनुमत शक्ति जागरण महायज्ञ आयोजित कर वहाँ सब मन्दिरों के प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्र के मन्दिरों से हस्ताक्षर युक्त प्रस्ताव लेकर आएँगे। देश में ऐसे ८००० से अधिक केन्द्र हैं जहाँ यह महायज्ञ व विशाल धर्मसभाएँ आयोजित होंगी।

इस अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद् के अन्तर्राष्ट्रिय अध्यक्ष श्री अशोक सिंहल ने कहा कि श्रीराम जन्मभूमि पर मन्दिर का निर्माण न्यायालय के फैसले से नहीं होगा। उन्होंने कहा कि रामजन्म भूमि का विषय सन्तों के नेतृत्व में उठा है, इसे वोट का विषय नहीं बनने दिया जाय। उन्होंने इसके लिए सभी राजनीतिक दलों से राजनीति से ऊपर उठकर संसद में कानून बनाने के लिए आगे आने का आह्वान् किया। श्री संहिल ने कहा कि पिछले वर्षों में जहाँ विश्व हिन्दू परिषद् का संगठनात्मक प्रभाव बढ़ा है, वहीं अनेक क्षेत्रों में हमारे रचनात्मक कार्य भी विकसित हुए है। अपनी स्थापना के बाद से ही विश्व हिन्दू परिषद् ने हिन्दू समाज को मिल रही अनेक चुनौतियों का पूरी सक्षमता से सामना किया है। उन्होंने कहा कि हमारे सामने अभी अनेक चुनौतियाँ हैं, लेकिन इन चुनौतियों पर हमें पूज्य सन्तों का मार्गदर्शन हमेशा से ही मिलता रहा है। इस कुम्भ में गङ्गा, श्रीराम जन्मभूमि और गो-वंश की रक्षा का विषय प्रमुखता से उठा है। गङ्गा की अविरलता और निर्मलता को लेकर अनेक आन्दोलन चले हैं। उन्होंने कहा कि नियन्त्रक महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो चुका है कि गङ्गा पर बाँधों का निर्माण न रोका गया तो भागीरथी सूख जायेंगी, उससे सटे गाँव उजड़ जायेंगे। अत: गङ्गा पर चल रही परियोजनायें रद्द की जाये।

पत्रकारों से बात करते हुए सन्तों ने कहा कि हम न्यायालय का सम्मान करते हैं, लेकिन निर्णय की प्रतीक्षा करते लम्बा समय बीत गया है। अब श्रीराम जन्मभूमि पर मन्दिर निर्माण के लिए जनजागरण के अलावा कोई मार्ग नहीं बचा है। वैसे भी अदालत हमारी आस्था के मामले पर निर्णय नहीं दे सकती। अब यह जरूरी हो गया है कि संसद कानून बनाकर राममन्दिर निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त करे। इस क्रम में सन्तों ने बताया कि आगामी जनजागरण अभियान सरकार को कानून बनाने के लिए बाध्य करेगा। राम मन्दिर निर्माण के लिए द्वितीय चरण का यह आन्दोलन सन्तों द्वारा गाँव-गाँव, घर-घर पहुँचाया जायेगा।

६ अप्रैल को कनखल निर्वाणी अणि अखाड़ा में सन्त महा सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें तीर्थ नगरी सहित देश के कोने-कोने से पहुँचे सन्तों ने गङ्गा की निर्मलता व अविरलता, राम जन्मभूमि पर मन्दिर निर्माण तथा गोवंश की रक्षा के लिए राज्य एवं केन्द्र सरकारों को चेतावनी दी। सन्तों ने एक स्वर से आगामी १६ अगस्त से सम्पूर्ण भाके

हर गाँव, तहसील तक राममन्दिर निर्माण के लिए जन जागरण का शुभारम्भ करने की घोषणा की जो १५ नवम्बर तक अविराम चलता रहेगा। सन्त-महात्माओं ने राममन्दिर निर्माण के लिए हो रही देरी पर राजनीतिक दलों को जिम्मेदार ठहराया। सन्त महात्माओं का कहना था कि हिन्दुओं के आस्था केन्द्र एक षडयन्त्र के द्वारा नष्ट किये जा रहे हैं, गङ्गा तथा राममन्दिर पर सरकार झूठ बोल रही है। उत्तराखण्ड से पधारे एक सन्त ने कहा कि यदि गङ्गा नहीं रही तो हरिद्वार, काशी, प्रयाग तथा गङ्गासागर जैसे तीर्थों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। गङ्गोत्री के सन्त ने कहा कि राममन्दिर निर्माण के लिए फिर से बड़ा आन्दोलन खड़ा करने की आवश्कता है। सन्त महासम्मेलन का सञ्चालन विश्व हिन्दू परिषद् के धर्माचार्य सम्पर्क प्रमुख जीवेश्वर मिश्र ने किया।

सन्त महासम्मेलन को रामजन्म भूमि न्यास के अध्यक्ष महन्त नृत्यगोपालदास, स्वामी अवधेशानन्द, डॉ० रामकमलदास वेदान्ती काशी, गोविन्ददेव गिरि हरिद्वार, स्वामी श्रीहरेरामाचार्य गया (बिहार), कैवल्यपीठाधीस्वर अविचलदास गुजरात, स्वामी चिन्मयानन्दजी, महामण्डलेश्वर वियोगानन्द जी उत्तराखण्ड, साध्वी ऋतम्भरा, श्रीवैष्णवदास ऋषिकेश, श्रीभक्तिपरायण स्वामी आन्ध्रप्रदेश ने भी सम्बोधित किया। इस अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद् के अन्तराष्ट्रिय अध्यक्ष श्री अशोक सिंहल, कार्याध्यक्ष श्रीवेदान्तम्, महामन्त्री श्री प्रवीण भाई तोगड़िया, केन्द्रीय मन्त्री राजेन्द्र सिंह पंकज सहित अनेक विशिष्ट सन्त व सभी अखाड़ों एवं बाड़ाओं के प्रतिनिधि आचार्य व श्रीमहन्त प्रमुख रूप से उपस्थित थे। इस सन्त सम्मेलन में तीर्थ नगरी के प्रायः हर सन्त का आगमन हुआ। जिसनें भी सन्त सम्मेलन के बारे में सुना दौड़ा चला आया। सन्तों की उपस्थिति के कारण विशाल पण्डाल भी छोटा पड़ गया। सम्पूर्ण सन्त समाज गो, गंगा व श्रीराम मन्दिर निर्माण के मुद्दों पर पूरी तरह सङ्कल्प-बद्ध और एकजूट दिखा।

****

भगवद् विरह की बेचैनी से विशुद्ध हो गयी वैकुण्ठधाम (श्रीविष्णुपुराण)

शरत्पूर्णिमा को रात श्रीकृष्ण ने संकेत स्थल पधारकर अपनी दिव्य मुरली बजायी, सभी गोपियाँ उधर आ गयी, परन्तु एक गोपी गुरुजनों से डरती हुई घर से बाहर निकल न सकी। वह अपने कमरे में बैठकर आँख बंद कर श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगी। महान योगी की तरह उसकी भी समाधि अवस्था हो गयी। अपने मन से भगवान का परिपूर्ण अनुभव किया और महान आनन्द पाया, जिससे उसका सारा पुण्य नष्ट हो गया। उसके मन में भगवान के साक्षात् दर्शन पाने की इच्छा उत्पन्न हुई, परन्तु वे न कि उससे सारा पाप नष्ट हो गया। इस प्रकार अपने समस्त पुण्य पापो के नष्ट हो जाने पर वह गोपी सर्वथा परिशुद्ध होकर शरीर छोड़कर परम पद चली गयी।

तच्चित्ताविमलाह्लाद क्षीण पुण्यचया तदा।
तदप्राप्ति महादुःख विलीनाशेषपातका।।
चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरुपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गताऽन्या गोपकन्यका।।

श्रीविष्णुपुराण

पुण्य और पाप का काम है सुख और दुःख देना। इस गोपी के एक क्षण के मानसिक भगवदनुभव से उसके सारे क्षण में भगवद्वियोग से सारे पाप का फल महान दुःख मिला। उससे शीघ्र ही वह अपने कर्मबन्धन से मुक्त हो गयी। भगवद्चरणारविन्द के आश्रित होकर परमानन्द का अनुभव करने लगी।

जो मानव अपने जीवन को आनन्दमय बनाना चाहता हो वह भगवद्गुणों एवं उनका स्वरूप का चिन्तन करने का अभ्यास करे।

****

जीवों पर भगवान् की निर्हेतु कृपा

भगवान के कृपा एक अमूल्य वस्तु है जीव का स्वाभाव अपराध करते रहना है ऐसे अपराधी जीव के किसी एक गुण को समझकर उस पर कृपा कर देते हैं जिसे निर्हेतु कृपा कहते हैं। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१- एक व्यक्ति विषयासक्त था, वह वैश्या के सङ्ग से कभी हटना नहीं चाहता था। वेश्या भगवान के मन्दिर में जान नृत्य आदि से सेवा करती थी। भगवान के मन्दिर में प्रेम नहीं रहने पर भी विषयासक्त व्यक्ति वेश्या को देखने के लिए मन्दिर में बार-बार जाता था उसे अनिछया भी भगवान के दर्शन हो जाते थे। मन्दिर जाना और भगवान का दर्शन करना सत्कर्म है परन्तु विषयासक्त व्यक्ति दर्शन के कामना से मन्दिर में न जाकर वैश्या के दर्शन के लिए ही जाया करता था। उस समय विषयासक्त व्यक्ति के भगवान का दर्शन हो जाने से भगवान ने उसके दोषों पर ध्यान न देकर अनिछया अपने दर्शन को निमित्त बनाकर भगवान ने उसे कल्याण कर दिया।

२- एक व्यापारी ने अपने काम के लिए अनेक नौकरों को नियुक्त किया। उनमें किसी का नाम नारायण किसी का नाम गोविन्द और किसी का नाम केशव था। नौकरों को बुलाने की कामना से व्यापारी बार-बार पुकारते समय हे केशव! हे गोविन्द! हे नारायण! नाम उच्चारण करता रहता था। उस व्यापारी में भगवत् नाम उच्चारण की भावना नहीं थी। केवल नौकर को पुकारने के लिए भगवान का नाम लेता था। उस व्यापारी को मरने पर नौकर के नाम लेने के निमित्त भगवत् नाम उच्चारण करने के कारण भगवान ने उसे मूक्त कर दिया।

अत: भगवान निर्हेतु कृपाकर जीवों का उद्धार करते रहते हैं।

****

महान अपराधी इन्द्र पर भगवान् ने की कृपा

महर्षि दुर्वासा ने किसी विद्या पर की स्त्री से माँगकर एक दिव्य माला प्राप्त की। उसे लेकर दुर्वासा जी स्वर्ग में चले गये। उन्होंने वहाँ देखा कि देवराज इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर नगर भ्रमण कर रहें हैं। दुर्वासा मुनि ने विद्याधर स्त्री से प्राप्त दिव्यमाला इन्द्र को दी। ऐश्वर्यमदमत इन्द्र ने उस माला का महत्त्व नहीं समझा। अतएव उसने माला को हाथी के सिर पर डाल दिया। हाथी ने सूंड से उस माला को नीचे गिराकर अपने पैर से घिसकर नष्ट कर दिया। दुर्वासा उसे देखकर कुपित हो गये। उन्होंने देवराज इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा सारा ऐश्वर्य नष्ट हो जायेगा। इन्द्र ऐश्वर्य हीन हो गये। समस्त देवों ने दुःखी होकर भगवान श्रीविष्णु के पास गये। उन्होंने अतिदीन भाव से प्रेम पूर्वक भगवान का स्तवन किया। भगवान समझते कि ये देव बड़े स्वार्थी और अहंकारी असीम कृपा से प्रेरित होकर वासुग्निाम से लपेटे हुए मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र मन्थन करया और अमृत निकालकर देवों को पिलाया तथा उनका नष्ट ऐश्वर्य भी दे दिया।

भक्त वत्सल भगवान देवताओं के दीन वचन से द्रवित होकर मन्दराचल पर्वत को कच्छप बनकर अपने शरीर पर धारण किये। तदनन्तर समुद्र का मन्थन हुआ। भगवान ने अपने दिव्य मंगल विग्रह को क्लेश देकर देवों का काम पूरा किया। ऐसे हैं परमदयालु भक्त वत्सल भगवान विष्णु।

****

धर्मरथ चल पड़ा अब कहीं रूके नहीं

पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।
खड़ा रथ निहारता कहाँ गया सारथी।।

स्वदेश नष्ट हो रहा विवेक भ्रष्ट हो रहा,
आज राष्ट्र भक्ति का स्वरूप नष्ट हो रहा।
साधना मिटे नहीं मिटे नहीं साधकी,
पुकरता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

भेदभाव बढ़ रहा लोग में समाज में,
द्वेष भी पनपता नगर गाँव-गाँव में।
मन्द गति हो गई स्वधर्म स्वाभिमान की,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

मिट गई शान्ति है बढ़ रही भ्रान्ति है,
लूट पाट मच गई फैल रही अशान्ति है।
धज्जियाँ उड़ रही प्रशासन के नाम की,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

उठो पुनःशक्ति के, पथ रोक दो विपत्ति के,
देशभक्ति का दीया फिर कभी बुझे नहीं।
धर्मरथ चल पड़ा अब कहीं रूके नहीं,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

****

विशाल टिहरी बाँध टूटा तो क्या सम्भावित है?

स्थान	टिहरी से दूरी	पानी पहुँचने मे लगने वाला संभावित समय	पानी की संभावित ऊँचाई
ऋषिकेश	७० कि०मी०	६३ मिनट	२५० मी०
हरिद्धार	१०४ कि०मी०	८० मिनट	३२ मी०
बिजनौर	१७९ कि०मी०	४ घण्टे ४५ मिनट	१७.७२ मी०
मेरठ	२१४ कि०मी०	७ घण्टे २५ मिनट	९.०५ मी०
हापुड़	२१४ कि०मी०	९ घण्टे ५० मिनट	८.७८ मी०
बुलन्दशहर	२६६०५ कि०मी०	१२ घण्टे ९ मिनट	८.७८ मि०

अभिप्रायह है कि बाँध टूटने पर ऋषिकेश तथा हरिद्वार का अस्तित्त्व समाप्त हो जाऐगा।

●

****